श्रद्धांजलि

गुरुवर 'दीन'जी

की

पवित्र एवं पुण्य-स्मृति

में

वक्तव्य

'काव्यांग-कौमुदी' की यह 'कला' इंटरमीडियेट (Intermediate) के विद्यार्थियों की आवश्यकता-पूर्ति के निमित्त प्रस्तुत की गई है। यह भाग प्रथम कला का परिष्कृत एवं परिवर्द्धित रूप है। क्रमिक-विकास के सिद्धांतानुसार निर्मित होने के कारण उक्त कक्षा के परीक्षार्थियों के अनुरूप विषय और बढ़ा दिए गए हैं। रस, अलंकार और पिंगल-संबंधी अध्यायों के देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होगा। प्रथम अध्याय कुछ और पल्लवित किया गया है। ऊँची कक्षा के परीक्षार्थियों के लिये लिखी जाने के कारण यत्र-तत्र सरल उदाहरण भी बदल दिए गए हैं। हमें आशा है, यह भाग उक्त विद्यार्थियों की पूर्णतया आवश्यकता-पूर्ति कर सकेगा।

ब्रह्मनाल, काशी
रामनवमी, १९८८

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

विषय-सूची

के अनुसार रचना की गई हो। तदनुसार काव्य के अंतर्गत कविता, नाटक, आख्यायिकाएँ आदि सभी आ जाते हैं। रामचरित-मानस, रामचद्रिका, सत्य-हरिश्चंद्र, सप्तसरोज, सेवासदन आदि सभी 'काव्य-ग्रंथ' हैं। जिन ग्रंथो में काव्य-लक्षण, उसके भेद (रस-भाव, अलंकार), गुण, दोप, छंद आदि का विवेचन किया जाय, वे 'साहित्य' के अतर्गत हैं। कवि-प्रिया, काव्य-निर्णय, काव्य-कल्पद्रुम, अलंकार-मजूषा, छंदःप्रभाकर आदि 'साहित्य' ग्रंथ हैं। तात्पर्य यह कि प्राचीनों के मत से 'लक्षण-ग्रंथ' तो 'साहित्य' के नाम से पुकारे जाते थे और 'लक्ष्य' या 'उदाहरण-ग्रंथ' 'काव्य' के नाम से।

अब 'साहित्य' शब्द 'लक्षण ग्रंथो' के लिये नहीं प्रयुक्त होता। अब उसका प्रयोग दो नये अर्थों मे होता है। क्योंकि वह ॲगरेजी के 'लिटरेचर' (Literature) शब्द का समानार्थक हो गया है। प्रथम तो इसका प्रयोग समस्त काव्य और साहित्य के समुदाय के लिये होता है। यथा— वह हिंदी साहित्य का विद्वान् है।' दूसरे इसका प्रयोग किसी भी विपय के ग्रथ-समुदाय के लिये किया जाने लगा है। यथा—'इतिहास का साहित्य हिंदी मे अच्छा नहीं है।' इस प्रकार दूसरे अर्थ मे यह कविता, गद्य, नाटक, आख्यायिका, उपन्यास आदि काव्य के अंतर्भूत विपयो के ग्रथ-समुदाय के लिये भी प्रयुक्त हो सकता है और काव्य से भिन्न गणित, ज्योतिप, वैद्यक, दर्शन, विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विपयों की ग्रंथ-समष्टि के लिये भी। इसलिये पहले अर्थ के अनु-

या चमत्कार सुनने या पढ़ने से ही प्रतीत हो, उसे 'श्रव्य-काव्य' कहते हैं। जैसे—रामचरित-मानस, रंगभूमि आदि। इससे स्पष्ट है कि दृश्य-काव्यों को श्रव्य-काव्य' भी कह सकते हैं, पर 'श्रव्य-काव्य' दृश्य नहीं कहे जा सकते।

संस्कृत मे 'दृश्य काव्य' को रूपक' भी कहते हैं। क्योंकि नट या अभिनेता मे नाटक के पात्रो के रूप का आरोप किया जाता है।* रूपक के दस भेद हैं—नाटक, प्रकरण,भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन। इनमें से 'नाटक' मुख्य है।

हिंदी में दृश्य-काव्य के लिये नाटक' शब्द का ही व्यवहार किया जाता है, और यह शब्द अँगरेजी के ड्रामा (Drama) का समानार्थी हो गया है। नाटको मे गद्य और पद्य दोनों का व्यवहार किया जाता है पर उन्हें श्रव्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनका वास्तविक चमत्कार और आनंद अधिकांश में अभिनय के अधीन है। उनका आनंद केवल सुनकर या पढ़कर भी उठाया जा सकता है, यह दूसरी बात है। श्रव्य-काव्य केवल पद्य, केवल गद्य अथवा गद्य-पद्य दोनो मे लिखा जा सकता है। इसलिये शैली अनुसार किए गए भेदो को श्रव्य काव्य के अंतर्गत भी रख सकते हैं।

श्रव्य-काव्य के पद्यात्मक विभाग दो प्रकार के होते हैं—(१) महाकाव्य और (२) खंडकाव्य। महाकाव्य मे जीवन के विस्तृत

* रूपारोपात्तु रूपकम्—साहित्य-दर्पण।

घटना पद्यबद्ध कही जाती है। स्मरण रखना चाहिए कि 'खंडकाव्य' 'महाकाव्य' के किसी एक अंश को नहीं कहा जा सकता। खंड काव्य महाकाव्य के बड़े कथानक से कथा-भाग लेकर बनाया जा सकता है, पर वह स्वतः संपूर्ण होता है। महाकाव्य का अंगभूत कदापि नहीं; जैसे—जयद्रथ वध।

प्रबंध-भेद से श्रव्य-काव्य दो प्रकार का हो सकता है—(१) प्रबंध-काव्य और (२) मुक्तक-काव्य। प्रबंध-काव्य की सीमा में महाकाव्य, खंड-काव्य सभी आ जाते हैं। इसमें कथा-भाग के सहारे पर रचना की जाती है, इसलिये इसका प्रत्येक पद्य दूसरे से जुड़ा हुआ रहता है। उसका वास्तविक महत्व प्रबंध-काव्य के भीतर ही रहता है, उसके बाहर वैसा नहीं, जैसे—पद्मावत। किंतु मुक्तक-काव्य का प्रत्येक पद्य अपने पहले अथवा पीछे के किसी पद्य से चिपका नहीं रहता। इसमें प्रत्येक पद्य अपने विषय को प्रकट करने के लिये स्वतः समर्थ होता है, जैसे—बिहारी-सतसई।

(३) रमणीयता के अनुसार—काव्य के तीन भेद हो सकते हैं। रमणीयता शब्द और उसके अर्थ से संबंध रखती है, अतः इन भेदों के बारे में कुछ कहने से प्रथम 'शब्द-शक्ति' का भी कुछ स्वरूप समझा देना आवश्यक प्रतीत होता है।

शब्दों के अर्थ तीन प्रकार की शक्तियों से जाने जाते हैं—(१) अभिधा, (२) लक्षणा और (३) व्यंजना।

(१) अभिधा—पूर्व-संचित ज्ञान अथवा व्याकरण-शब्दकोष

के आधार पर शब्द के सुनते ही जिस अर्थ का सबसे पहले बोध होता है, उसे 'वाच्यार्थ' कहते हैं। इस अर्थ को बतलानेवाला शब्द 'वाचक' कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है, उसे 'अभिधा' कहते हैं। जैसे—'बालक रोटी खाता है'। इस वाक्य में प्रत्येक शब्द अपने संकेतित अर्थ* में ही प्रयुक्त हुआ है।

'वाचक' शब्द चार प्रकार के होते हैं—(१) जाति-वाचक, (२) गुण-वाचक, (३) द्रव्य-वाचक (यदृच्छा) और (४) क्रिया-वाचक। जाति-वाचक शब्द से पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है। जैसे—मनुष्य, गौ, वृक्ष आदि। गुण वाचक शब्द से किसी जाति की विशेषता ज्ञात होती है। जैसे—साँवला (मनुष्य), धवरी (गाय), रूखा (वृक्ष) आदि। द्रव्य-वाचक शब्द से केवल एक व्यक्ति का बोध होता है। जैसे—रामचन्द्र कामधेनु कल्पतरु आदि। क्रिया-वाचक शब्द से वस्तु के साध्य धर्म¹ का ज्ञान होता है। जैसे—कामदा पाचक, अभिनन्दन आदि।

---

*व्याकरण, कोश [illegible] से निश्चित मुख्य अर्थ।

¹ एक क्रिया के सिद्ध होने के लिये कई [illegible] करने पड़ते हैं [illegible] क्रिया की सिद्धि निर्भर रहती है। [illegible] होते हैं। [illegible] धर्म' कहते हैं जैसे—पकाना क्रिया के लिए [illegible] आग [illegible] सेंकना आदि कई काम करने पड़ते हैं। यही 'पकाना' साध्य धर्म है।

अनेकार्थवाची शब्दों के एक अर्थ का निर्णय करने के लिये संयोग, साहचर्य, विरोध, प्रकरण, देश-काल आदि कई ढंग हैं। ये सब भी अभिधा-शक्ति के ही अंतर्गत आते हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिये यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

उदाहरण—

(१) विचरत 'हरि' सिंहिनि सहित।

'हरि' शब्द के विष्णु, इंद्र, सर्प, सिंह आदि कई अर्थ होते हैं; पर 'सिंहिनि' शब्द के 'संयोग' से उसका अर्थ यहाँ पर 'सिंह' ही होगा।

(२) 'राम'-कृष्ण ब्रज भूषन जानो।

'राम' शब्द परशुराम, रामचंद्र और बलराम का बोधक होता है, पर 'कृष्ण' के 'साहचर्य' से यहाँ पर उसका अर्थ 'बल-राम' ही होगा।

(३) मत्त 'नाग' तम[१] कुंभ विदारी[२]।
ससि-केसरी[३] गगन बनचारी[४]।

'नाग' शब्द का अर्थ सर्प और हाथी होता है, पर केसरी (सिंह) के प्रसिद्ध 'विरोध' के कारण यहाँ 'नाग' का अर्थ हाथी ही होगा।

---

१ अंधकार रूपी हाथी। २ कुंभ (हाथी के मस्तक) को फाड़नेवाला। ३ चंद्रमा रूपी सिंह। ४ आकाश रूपी वन में चलनेवाला।

(४) सुधा वृष्टि भइ दुहुँ 'दल' ऊपर।
जिए भालु कपि नहिं रजनीचर[1] ॥

दल के अर्थ पत्ता, सेना, मंडली आदि होते हैं; पर युद्ध का 'प्रकरण' होने से यहाँ 'दल' का अर्थ 'सेना' ही होगा।

(५) मरु[2] में 'जीवन' दूरि है।

'जीवन' के अर्थ जल, ज़िंदगी आदि हैं, पर मरुदेश के बल से इसका अर्थ यहाँ पर 'जल' ही होगा।

(२) लक्षणा—यदि शब्द के मुख्यार्थ अर्थात् अभिधा-द्वारा प्राप्त वाच्यार्थ को न ग्रहण करके उसीसे संबंधित अर्थ का ग्रहण किया जाता है, तो उस अर्थ को 'लक्ष्यार्थ' कहते हैं। जिस शब्द से इस अर्थ का बोध होता है उसे 'लक्षक' कहते हैं और इस अर्थ को बतानेवाली शब्द-शक्ति का नाम 'लक्षणा' है। मुख्यार्थ को छोड़कर अन्यार्थ के ग्रहण करने का कारण कोई चली आती हुई 'रूढ़ि' होती है अथवा कोई विशेष प्रयोजन होता है।

उदाहरण—

(१) फलो सकल मनकामना [illegible]
आजु [illegible]

मन-कामना कोई वृक्ष नहीं है [illegible] चैन (आनंद) कोई धन नहीं है कि लूटा जा सके, हरि-रूप (भगवान का सौंदर्य) कोई पेय पदार्थ नहीं है [illegible] आचमन किया जाय और नेत्र कोई पुष्प

1 निशाचर (राक्षस)। 2 [illegible]।

नहीं है कि [illegible]। किन्तु इस प्रकार [illegible]
है। अतः यहाँ पर '[illegible]' का अर्थ '[illegible]', '[illegible]' का अर्थ
'पाना', '[illegible]' का अर्थ '[illegible]' और '[illegible]' का अर्थ
'सुखी हुए' होगा।

(२) काऊ कोरिक¹ संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार॥

यहाँ यदुपति (श्रीकृष्ण) को 'संपति' कहा गया है। संपत्ति का मुख्यार्थ है 'धन-दौलत'। किन्तु यहाँ पर 'संपति' का अर्थ 'पालक' 'सुखदायी' आदि है। यह अन्यार्थ मुख्यार्थ से संबंधित है, क्योंकि संपत्ति भी पालनेवाली और सुखदायिनी होती है। ऐसा कहने से कवि की 'भक्ति' सूचित होती है यही इसका प्रयोजन है।

(३) व्यंजना—वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों के निकल चुकने पर भी जो कोई विलक्षण अर्थ बोध होता है, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं। जिस शब्द से ऐसा अर्थ बोध होता है उसे व्यंजक कहते हैं। जिस शब्द-शक्ति से उक्त अर्थ का बोध होता है, उसे 'व्यंजना' कहते हैं। मुख्यार्थ से भिन्न जो एक विलक्षण अर्थ निकलता है, वह कभी कभी मुख्यार्थ से घटकर या उसका बराबर का होता है और कभी-कभी उससे बढ़कर। इसीलिये व्यंजना के दो भेद कर दिए गए हैं, पहले का नाम 'गुणीभूत व्यंग्य' है और दूसरे का नाम 'ध्वनि'।

---

1. करोड़।

प्रधान है। इसी व्यंग्य के न्यूनाधिक्य और अभाव से काव्य के तीन भेद किए गए हैं—१. उत्तम, २. मध्यम और ३. अवर (अधम)। उत्तम काव्य वह है जिसमें ध्वनि की अधिकता हो अर्थात् जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ विशेष चमत्कारवाला हो। मध्यम-काव्य वह है जिसमें गुणीभूत व्यंग्य हो अर्थात् जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से न्यून या समकक्ष हो। अवर या अधम-काव्य वह है जिसमें व्यंग्य का अभाव हो अर्थात् जहाँ केवल वाच्यार्थ का चमत्कार हो। इसे चित्र (अलंकार) भी कहते हैं। केवल अलंकारों से लदी हुई और व्यंग्य से हीन कविता निम्नश्रेणी की होती है।

४. काव्य के अंग

यहाँ तक काव्य और उसके भेदों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यहाँ हमें यह बताना है कि काव्य के अंग कौन कौन से हैं। काव्य का प्रधान गुण है मनुष्य की रागात्मक वृत्तियों का कलापूर्ण निरूपण। इसे साहित्य-शास्त्र में रस और भाव कहते हैं। रस और भाव दोनों काव्याभ्यासियों के विचार से व्यंग्य के ही अंतर्गत आते हैं। इसलिये व्यंग्य को अथवा और व्यापक दृष्टि करें तो रस और भाव को काव्य की आत्मा कहना चाहिए। 'भाषा' काव्य का शरीर है। अलंकार उसका शृंगार है। गुण दोष उसके गुण दोष हैं। पिंगल या छंदशास्त्र को बाह्यावरण कहना चाहिए। यद्यपि यह काव्य के अंगों में नहीं आता, पर बाह्यावरण आंतरिक रूप से न सही, बाह्य रूप से ही काव्य के

शरीर से संबंधित है। इसलिये काव्य के अंगो का विचार करते समय उसका विवेचन भी आवश्यक है। अतएव इस पुस्तक में रस-भाव, अलंकार, गुण-दोष और पिंगल के ऊपर थोड़ा-बहुत प्रकाश डाला जायगा।

(द्वितीय प्रकाश)

रस-परिचय

१. रस क्या है ?

काव्य का विवेचन करते हुए हम कह आए हैं कि रस काव्य की आत्मा है। कविता-मात्र में रस ही मुख्य है। 'रस' शब्द के कई अर्थ हैं—जल या जल सदृश तरल पदार्थ, स्वाद, वैद्यक की विशेष औषधियाँ आदि। जब कहा जाता है कि 'यह आम रस से भरा है' तो रस का अर्थ आम में रहनेवाला जल सदृश तरल पदार्थ होता है। जब हम कहते हैं कि 'यह भोजन सरस है' तो रस का अर्थ स्वाद हो जाता है। इसी प्रकार 'अमुक वैद्य के पास बड़े अच्छे-अच्छे रस हैं' कहने में रस का अर्थ औषधि-विशेष हो जाता है। किंतु काव्य में रस के ये अर्थ नहीं होते। इसमें 'रस' का अर्थ आनंद लिया जाता है। केवल काव्य ही में नहीं, बोल-चाल में भी कभी-कभी इस अर्थ में 'रस' का प्रयोग होता है, जैसे—हमें चिढ़ाने में क्या 'रस' मिलता है? यहाँ रस का अर्थ आनंद आदि ही लिया जा सकता है।

साहित्य-शास्त्र में इसका प्रयोग 'आनंद' के लिये तो होता है, पर वह असाधारण आनंद के लिये, लौकिक आनंद के लिये नहीं। इसलिये कहना चाहिए कि साहित्य-शास्त्र में 'रस' का अर्थ 'अलौकिक' या 'लोकोत्तर आनंद' है। काव्य के पढ़ने से पाठकों के हृदय मे या नाटको के देखने से दर्शकों के हृदय में जो एक प्रकार का सुखपूर्ण विकास होता और जिससे वे अपनत्व तक भूल बैठते हैं, उस अलौकिक आनंद का नाम 'रस' है। 'यह कविता या छंद सरस हैं' इस कथन मे रस का अर्थ वही अलौकिक आनंद है।

काव्य के पढ़ने से जो अलौकिक आनंद उद्भूत होता है, उसका कारण मनोविकार है। मनुष्य के हृदय में अनेक प्रकार के मनोविकार अथवा साहित्य-शास्त्र के शब्द में 'भाव' वर्तमान रहते हैं। ये भाव कविता पाठ या नाटक देखने से उठ खड़े होते हैं और पाठक या दर्शक उन्हीं भावो मे मग्न हो जाता है, जिनका प्रसंग चल रहा हो। इसका कारण यह है कि काव्य में मानव-जीवन और उसकी अनुभूतियो का चित्रण रहता है। पाठक या दर्शक पढते या देखते समय उन चित्रणा पर आत्मभाव का आरोप करके स्वय उसी में तल्लीन हो जाता है। आनन्दपूर्ण वर्णन से वह प्रसन्न होता है, हँसी की बात से उसकी बत्तीसी खिल उठती है, वीरतापूर्ण वर्णन से उत्साह भर जाता है और करुण प्रसग के आ पढने से वह रो पडता है।

२. रस-सामग्री

काव्य के पढ़ने अथवा अभिनय का अवलोकन करने में पाठकों अथवा दर्शकों में जिन भावों का उद्रेक होता है, वे सब अप्रकट रूप से उनके हृदय में वर्तमान रहते हैं। अवसर पाकर वे भाव सहसा जागरित हो उठते हैं। जो भाव सबमें स्थायी-रूप से वर्तमान रहते हैं, उन्हे 'स्थायी-भाव' कहते हैं। प्राचीन आचार्यों ने छान-बीन करके ऐसे भावों की एक निश्चित संख्या निर्दिष्ट की है। ये भाव नौ हैं—(१) रति (प्रेम), (२) हास, (३) शोक, (४) क्रोध, (५) उत्साह, (६) भय, (७) घृणा, (८) आश्चर्य और (९) निर्वेद (शांति)। आचार्यों ने अभिनय के उपयुक्त केवल आठ ही स्थायी-भाव माने हैं। निर्वेद (शांति) को वे लोग श्रव्य-काव्य के ही उपयुक्त मानते हैं। इधर नये-नये आविष्कारों के साथ अनेक स्थायी-भावों का भी लोगों ने आविष्कार किया है। जिनमें 'वात्सल्य' मुख्य है। प्राचीन आचार्यों ने इसे स्थायी-भाव नहीं माना है, केवल भाव ही माना है।

जिन कारणों से इन भावों का उद्रेक होता है, उन्हें साहित्य-शास्त्र में 'विभाव' कहते हैं। ये विभाव दो प्रकार के माने गए हैं—(१) आलंबन और (२) उद्दीपन। जिनके आश्रय से भावों का उद्भव होता है, उन्हे 'आलंबन-विभाव' कहते हैं और जिनका सहारा पाकर उद्भूत भाव अधिक बढ़ जाते हैं, वे 'उद्दीपन-विभाव' कहलाते हैं। यदि किसी की दुष्टता देखकर उसपर क्रोध हो आवे तो वह व्यक्ति 'आलंबन' हुआ और उसका दुष्ट कर्म 'उद्दीपन'।

जब किसी के हृदय में कोई भाव उठता है, तो उसका प्रभाव उसके बाह्य अंगों पर भी पड़ता है। वह अनेक प्रकार की चेष्टाएँ करता है; क्रोध से भौंहें चढ़ जाती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, ओंठ फड़कने लगते हैं और शरीर काँपने लगता है। हँसी से मुख विकसित हो जाता है, दाँत दिखाई पड़ने लगते हैं और मुख से 'हा हा हा हा' का शब्द निकलने लगता है। इसी प्रकार लोग आश्चर्य में अवाक् रह जाते हैं और शोक में रो पड़ते हैं आदि। ये सब चेष्टाएँ 'अनुभाव' कहलाती हैं। क्योंकि इनके द्वारा यह पता चल जाता है कि अमुक व्यक्ति में अमुक भाव का उदय हो रहा है।

उक्त स्थायी-भावों के अतिरिक्त कुछ भाव ऐसे भी हैं, जो अस्थायी होते हैं। कुछ देर के लिये हृदय में उनका प्रादुर्भाव होता है और फिर वे विलीन हो जाते हैं। जैसे सरिता में एक के बाद एक लहर उठती है और धीरे-धीरे [illegible] वह विलीन हो जाती है इसी प्रकार ये भाव भी हैं। किंतु इन भावों [illegible]

इस प्रकार रस उत्पन्न करने के चार साधन हुए—

(१) स्थायी-भाव—जो भाव स्थायी-रूप से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में वर्तमान रहते हैं और जिनमे किसी विरोधी अथवा अविरोधी भाव के कारण किसी प्रकार का विकार नहीं उत्पन्न होता।

(२) विभाव—जिनके कारण रस की उत्पत्ति और वृद्धि होती है।

(३) अनुभाव—रसोत्पत्ति के कार्य या फल-स्वरूप चेष्टाएँ आदि, जिनमे रस का संचार होना लक्षित हो जाता है।

(४) संचारी-भाव—रस को बढ़ाने में सहायता पहुँचानेवाले अस्थिर भाव।

अस्तु, रस की वास्तविक परिभाषा यों होगी—"जब विभाव, अनुभाव और सचारी भावों की सहायता से पुष्ट होकर स्थायी-भाव परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है, तो उसे 'रस' कहते हैं।"

३. स्थायी-भाव

'अविरोधी अविरोध सब भावन सहित प्रधान।
मन विकार अन्तर उठत, सो थिर-भाव प्रमान॥'

जिस भाव को विरोधी अथवा अविरोधी भाव अपने में न तो छिपा सकते हैं और न दबा सकते हैं और जो रस में बराबर स्थिर रहता है, उस आस्वाद के मूल-भाव को 'स्थायी-भाव' कहते हैं।

'स्थायी' शब्द का अर्थ है 'स्थिर रहनेवाला'। यह भाव आदि

से लेकर अंत तक रसोत्पत्ति में वर्तमान रहता है, इसीसे इसे 'स्थायी' कहते हैं। इसके नौ भेद हैं—१. रति, २. हास, ३. शोक, ४. क्रोध, ५. उत्साह, ६. भय, ७. जुगुप्सा, ८. आश्चर्य और ९. निर्वेद या शान।

(१) रति

'जहाँ भिन्नता तें रहित, दंपति के चित चाह।'

पुरुष का स्त्री पर और स्त्री का पुरुष पर अपूर्व प्रेम उत्पन्न होना 'रति' है।

'रति' शब्द का अर्थ है 'प्रीति'। पुरुष और स्त्री की परस्पर प्रीति की ही 'रति' संज्ञा है। गुरु, देव, पुत्रादि पर जो 'प्रीति' उत्पन्न होती है, उसे केवल भाव कहते हैं। उसका स्त्री-पुरुष की प्रीति की भाँति 'स्थायी' नाम नहीं है।

उदाहरण—(दोहा)

निकसत ही ससि उदधि जिमि[1] धीरज कछु इक छोरि[2]।
गंगाधर[3] देखन लगे बिंबाधर मुख-गोरि[4]॥

यहाँ महादेवजी का सभिलाष पार्वतीजी की ओर देखना 'रति स्थायी भाव है। केवल दृष्टिपात करने से यह भाव ही है रस की पूर्ण अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ है।

---

१ निकलते हुए चंद्रमा को जैसे समुद्र देखता है। २ छोड़कर। ३ महादेव ४ पार्वती का अधर और मुख।

(२) हास

'हँसिवे जोग प्रसंग में, उर उपजत आनंद ।'

विचित्र वचनों और रूप की रचना से हृदय में जो एक प्रकार का आनंद होता है और उससे जो एक सीमित हँसी आती है, उसे 'हास' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

विवस न ब्रज-वनितान के, सखि मोहन-मृदु-काय[1] ।
चीर[2] चोरि सुकदंव पै, कछुक रहे मुसुकाय ॥

यहाँ पर श्रीकृष्ण का किंचित् हास स्थायी-भाव है।

(३) शोक

'अहित लाभ हित हानि तें, कछु जु हिये दुख होत।'

इष्ट के नाश से हृदय में जो व्याकुलता उत्पन्न होती है, उसे 'शोक' कहते हैं।

प्रिय के वियोग से जो दुःख होता है, वह स्थायी-भाव नहीं होता; क्योंकि प्रिय में प्रेम की स्थिति रहती है। इससे वहाँ 'रति' भाव ही स्थायी होता है। वहाँ जो शोक होता है, वह संचारी-भाव रहता है न कि स्थायी।

उदाहरण—(सवैया)

मोहिं न सोक इतौ तन-प्रान को जाय रहैं कि लहैं लघुताई ।
एहू न सोच घनो 'पद्माकर' साहियी जा पै सुकंठ[3] ही पाई॥

---

१ शरीर। २. वस्त्र। ३ सुग्रीव।

सोच यहै एक, बालि बधे पर देहिंगो अंगद को जुवराई।
यों दव बालि-बधू के सुने करुनाकर को करुना कछु नाई॥

यहाँ राम के हृदय में कुछ करुणा होना कहा गया है, यही शोक स्थायी-भाव है।

(४) क्रोध

'अपमानादिक तें प्रगट, जो विकार चित होत।'

अपमानादि से हृदय में हर्ष के प्रतिकूल जो मनोविकार उत्पन्न होता है, उसे 'क्रोध' कहते हैं।

इस अपमान में घोर अपराधों की गणना करनी चाहिए। जैसे—बड़े लोगों अथवा प्रिय बंधुओं के वध से शत्रु द्वारा किया गया अपमान। साधारण अपराध के कारण जो कड़े वचन कहे जाते हैं, वे अमर्ष संचारी भाव के चिह्न हैं वहाँ क्रोध स्थायी नहीं होता।

उदाहरण—(चौपाई)

गौर सरीर भूति[१] भलि भ्राजा[२]। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा।
सीस जटा ससि-बदन सुहावा। रिस बस कछुक अरुन ह्वै आवा॥

यहाँ परशुराम के नेत्रों में शिव धनुष-भंग से किंचित ललाई हो आना क्रोध स्थायी-भाव है।

---

१ भस्म। २ शोभित थी।

(५) उत्साह

'लखि उद्भट प्रतिभट जो कछु, उगजगात चित चाव।'

शूरता, दान या दया से उत्पन्न उत्तरोत्तर बढ़ते हुए चित के चाव का नाम 'उत्साह' है।

उदाहरण—(चौपाई)

सुनहु भानु कुल-पंकज-भानू[1]। कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हार अनुसासन[2] पावउँ। कंदुक-इव[3] ब्रह्मांड उठावउँ॥
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी। सकउँ मेरु मूलक[4]-इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो[5] पिनाक[6] पुराना॥

यहाँ लक्ष्मण के इस कथन में 'उत्साह' स्थायी-भाव है। 'जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ' और 'तव प्रताप महिमा भगवाना' के कारण यह भाव ही है, पूर्ण 'रसत्व' को नहीं प्राप्त हुआ है।

(६) भय

'विकृत भयकर के डरन, जो चित कछु अकुलात।'

अपराध, विकृत शब्द, चेष्टा या विकृत जीवादि के दर्शन से उत्पन्न व्याकुलता का नाम 'भय' है।

उदाहरण—(दोहा)

रावन के हैं दस बदन, और बीस हैं बाँह॥
यह सुनिकै हिय भय कछू, भयो राम-दल माँह॥

---

१ सूर्यवंश रूपी कमल के सूर्य (राम)। २ आज्ञा। ३ गेंद की तरह। ४ मूली। ५ बेचारा। ६ शिव का धनुष।

यहाँ रावण के विकृत रूप की बात सुनकर राम की सेना में किंचित् व्याकुलता का उत्पन्न होना 'भय' स्थायी-भाव है।

(७) जुगुप्सा

'सुने-लखे किहि वस्तु के, घिन उपजत चित माँह।'

किसी दोष-युक्त वस्तु के देखने, सुनने, स्मरण अथवा स्पर्श से चित्त में जो किंचित् घृणा का भाव उत्पन्न होता है, उसे 'जुगुप्सा' कहते हैं।

'जुगुप्सा' का अर्थ है 'ग्लानि'। किसी घृणित पदार्थ के कारण हृदय में उसके प्रति जो अश्रद्धा उत्पन्न होती है और उससे जो इंद्रियों में संकोच होता है, उसे जुगुप्सा कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

सूपनखा को रूप लखि, स्रवत रुधिर[1] बिकराल।
तिय-सुभाव सिय-हिय कछुक, घिन आई तिहि काल॥

यहाँ सीता के हृदय में शूर्पणखा के घृणित शरीर को देखकर जो उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हुई है, वही जुगुप्सा है। 'कछुक' शब्द से यह भाव ही है परिपक्व होकर 'रस' नहीं हो पाया।

(८) आश्चर्य

'अघटित घटित प्रपंच लखि, जहँ चित विस्मय होत।'

समझ में न आनेवाले पदार्थ के देखने सुनने स्पर्श अथवा स्मरण से चित्त में जो किंचित् विस्मय होता है, उसे 'आश्चर्य' कहते हैं।

1 खून।

(५) उत्साह

'लखि उद्भट प्रतिभट जो कछु, जगजगात चित चाव ।'

शूरता, दान या दया से उत्पन्न उत्तरोत्तर बढ़ते हुए चित्त के चाव का नाम 'उत्साह' है।

उदाहरण—(चौपाई)

सुनहु भानु कुल-पंकज-भानू[1] । कहउँ सुभाव न कछु अभिमानू ॥
जौं तुम्हार अनुसासन[2] पावउँ । कंदुक-इव[3] ब्रह्मांड उठावउँ ॥
काँचे घट जिमि डारउँ फोरी । सकउँ मेरु मूलक[4]-इव तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना । का बापुरो[5] पिनाक[6] पुराना ॥

यहाँ लक्ष्मण के इस कथन में 'उत्साह' स्थायी-भाव है। 'जौं तुम्हार अनुसासन पावउँ' और 'तव प्रताप महिमा भगवाना' के कारण यह भाव ही है, पूर्ण 'रसत्व' को नहीं प्राप्त हुआ है।

(६) भय

'विकृत भयंकर के डरन, जो चित कछु अकुलात ।'

अपराध, विकृत शब्द, चेष्टा या विकृत जीवादि के दर्शन से उत्पन्न व्याकुलता का नाम 'भय' है।

उदाहरण—(दोहा)

रावन के हैं दस बदन, और बीस हैं बाँह ॥
यह सुनिकै हिय भय कछू, भयो राम-दल माँह ॥

---

1. सूर्यवंश-रूपी कमल के सूर्य (राम)। 2. आज्ञा। 3. गेंद की तरह। 4. मूली। 5. बेचारा। 6. शिव का धनुष।

यहाँ रावण के विकृत रूप की बात सुनकर राम की सेना में किंचित् व्याकुलता का उत्पन्न होना 'भय' स्थायी भाव है।

(७) जुगुप्सा

'सुने-लखे किहि वस्तु के, घिन उपजत चित माँह।'

किसी दोष-युक्त वस्तु के देखने, सुनने, स्मरण अथवा स्पर्श से चित्त में जो किंचित घृणा का भाव उत्पन्न होता है, उसे 'जुगुप्सा' कहते हैं।

'जुगुप्सा' का अर्थ है 'ग्लानि'। किसी घृणित पदार्थ के कारण हृदय में उसके प्रति जो अश्रद्धा उत्पन्न होती है और उससे जो इंद्रियों में संकोच होता है, उसे जुगुप्सा कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

सूपनखा को रूप लखि, स्रवत रुधिर[1] विकराल।
तिय-सुभाव सिय-हिय कछुक, घिन आई तिहि काल॥

यहाँ सीता के हृदय में शूर्पणखा के घृणित शरीर को देखकर जो उसके प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हुई है वही जुगुप्सा है 'कछुक' शब्द से यह भाव ही है परिपक्व होकर 'रस' नहीं हो पाया।

(८) आश्चर्य

'अघटित घटित प्रपंच लखि, जहँ चित विस्मय होत।'

समझ में न आनेवाले पदार्थ के देखने सुनने स्पर्श अथवा स्मरण से चित्त में जो किंचित् विस्मय होता है उसे 'आश्चर्य' कहते हैं।

[1] खून।

उदाहरण—(दोहा)

सुर नर सब सचकित रहे, पारथ को रन देखि।
पै न गिन्यो, यदुनंद अति, करन पराक्रम पेखि॥

यहाँ 'सुर-नर' सबका चकित हो जाना आश्चर्य स्थायी-भाव है। 'पै न गिन्यो यदुनंद अति' से यह भाव ही है, पूर्ण रस नहीं।

(६) निर्वेद या शम

'जहँ बिसेस ज्ञानादि तें, जग सों होय विराग।'

विशेष ज्ञान के उत्पन्न हो जाने से सांसारिक विषयों से वैराग्य हो जाने को 'निर्वेद' या 'शम' कहते हैं।

'निर्वेद' शब्द का अर्थ है 'विशेष ज्ञान'। संसार की वस्तुओं की नित्यता और अनित्यता देखकर हृदय में उन वस्तुओं के प्रति जो निंदा-बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे निर्वेद कहते हैं। 'शम' का अर्थ 'शांति' है। सांसारिक अशांति से खिन्न होकर जब मन परमार्थ की ओर झुककर शांति-प्राप्ति का इच्छुक हो, तो शम' होता है।

उदाहरण—(सवैया)

काम से रूप[१] प्रताप दिनेस से, सोम[२] से सील गनेस से माने[३]।
हरिचंद से साँचे, बड़े बिधि[४] से, मघवा[५] से महीप बिषै सुखसाने।
सुक[६] से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस[७] तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जुपै राजिव-लोचन[८] राम न जाने।

---

१. सौंदर्य। २. चन्द्रमा। ३ मान्य। ४. ब्रह्मा। ५. इन्द्र। ६. शुकदेव। ७. चिरंजीवी लोमश ऋषि। ८ कमल-नेत्र।

२०. दीनता, २१. हर्ष, २२. व्रीड़ा, २३. उग्रता, २४. निद्रा, २५. व्याधि, २६. मरण, २७ अपस्मार, २८. आवेग, २९. त्रास, ३०. उन्माद, ३१. जड़ता, ३२. चपलता और ३३. वितर्क।

यहाँ पर विद्यार्थियों को विषय का ज्ञान कराने के लिये कुछ मुख्य संचारी-भावों का विवरण दिया जाता है—

(१) ग्लानि

'आधि-व्याधि तें अँग सिथिल, काज माँहि नहि चाव।'

आधि (मानसिक दुःख), व्याधि (शारीरिक क्लेश) के कारण अंगों का शिथिल होना और कार्य में उत्साह न दिखाना 'ग्लानि' है।

उदाहरण—(मंदाक्रांता)

आवेगों[1] से विपुल विकला[2] शीर्ण-काया[3] कृशांगी[4]।
चिंता-दग्धा व्यथित - हृदया शुष्क-ओष्ठा[5] मलीना॥
आसीना[6] थी निकट पति के अश्रु नेत्रा[7] यशोदा।
छिन्ना दीना विनत-वदना[8] मोह-मग्ना मलीना॥

यहाँ श्रीकृष्ण के चले जाने से यशोदा की दीन दशा में ग्लानि संचारी है।

---

१. व्याकुलता। २. अत्यन्त व्याकुल। ३. जर्जर शरीरवाली। ४. दुबले शरीरवाली। ५. सूखे ओठोंवाली। ६. बैठी हुई। ७. नेत्रों में (अश्रु) भरे हुई। ८. मुख नीचा करके।

(२) श्रम

'पथ तें व्यायामादि तें जहाँ थकाहट होइ।'

मार्ग के चलने, व्यायाम करने आदि से जहाँ संतोष सहित अनिच्छा अर्थात् थकावट हो वहाँ 'श्रम' होता है।

उदाहरण—(सवैया)

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू[1] धरि धीर दए मग में डग[2] द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल[3] की पुट सूखि गए मधुराधर[4] वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक[5] पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै[6]।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।

यहाँ पर मार्ग चलने से सीता का थक जाना श्रम संचारी है।

सूचना—'ग्लानि' में शरीर की निर्बलता के कारण शिथिलता होती है और श्रम में शरीर के सबल होने पर भी परिश्रम से शरीर में शैथिल्य आता है।

(३) धृति

'साहस ज्ञान सुसंग तें, धरै धीरता चित्त।'

विपत्ति में अविचलित बुद्धि का नाम 'धृति' है।

---

१. सीता। २ मार्ग में दो कदम रखे, थोड़ी दूर चली। ३ ललाट पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। ४. कोमल अधर-पुट। ५. कितनी दूर। ६. कहाँ पर।

उदाहरण—(कवित्त)

चले चंद्र-बान[1] घन-बान[2] औ कुहूक-बान[3],
　　चली हैं कमानैं[4] धूम आसमान छ्वै रह्यो।
चलीं जमदाढ़ैं[5], बाढ़वारैं[6] तलवारैं जहाँ,
　　लोह-आँच[7] जेठ को तरनि[8] मानों ध्वै रह्यो[9]॥
ऐसे समै[10] फौज बिचलाइ[11] छत्रसालसिंह,
　　अरि के चलाए पायँ[12] वीर-रस च्वै रह्यो।
हय[13] चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
　　ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो॥

यहाँ हय आदि के विचलित हो जाने से हाड़ा छत्रसाल पर जो विपत्ति आई, उसमें भी रण-भूमि में अटल रहना धृति है।

(४) मोह

'जँह आपने सरीर को, नैकु न रहै सँभार।'

भय, वियोग आदि से भ्रम उत्पन्न होकर चित्त में व्याकुलता का उत्पन्न होना और उससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान न रह जाना 'मोह' है

---

१ जिन बाणों में अर्द्ध चन्द्राकार गाँसी लगी रहती है। २. जो बाण धुएँ से अँधेरा कर देते हैं। ३ ये बाण उड़ाका और घोर ध्वनि करते हैं। ४ तोपें। ५ एक प्रकार की टेढ़ी तलवार। ६. तेज धारवाली। ७ हथियारों की रगड़ की आँच। ८. सूर्य। ९ उदय हो रहा है। १० समय। ११. विचलित करके। १२. पैर उखाड़ दिए। १३. घोड़ा।

उदाहरण—(मंदाक्रांता)

दौड़ा ग्वाला व्रज-नृपति[1] के सामने एक आया।
बोला गायें सकल वन को आपकी हैं न जातीं॥
दाँतों से हैं न तृण गहतीं, हैं न बच्चे पिलातीं।
हा हा! मेरी सुरभि[2] सबको आज क्या हो गया है॥

गायों का श्रीकृष्ण-वियोग से तृण न चरना, बच्चों को दूध न पिलाना आदि मोह है।

(५) विबोध

'सोवत तें जहँ जागियो, भाव मरम सुखदानि।'

निद्रा के पश्चात् अथवा अविद्या दूर होने पर चैतन्य-लाभ करना 'विबोध' है।

उदाहरण—(दोहा)

उठे लखन निसि बिगत सुनि, अरुन सिखा[3] धुनि कान।
गुरु ते पहिले जगतपति जागे राम सुजान॥

यहाँ लक्ष्मण और राम का निद्रा के पश्चात् जागना विबोध है।

(६) स्मृति

'[illegible]'

पहले के देखे सुने हुए पदार्थ का पुनः स्मरण होना स्मृति है।

१ नंद। २ गाय। ३ मुर्गा।

उदाहरण—(कुकुभ छंद)

कुंज ! तुम्हारे कुसुमालय में, प्राणनाथ आकर बहुधा ।।
पान कराते थे सब ब्रज को, वेणु बजाकर मधुर-सुधा ।।
तुम्हें विदित है सुनकर वह रव, ज्यों शिखनी[1] घन-रव[2] सुनकर।
कौन उपस्थित हो जाती थी, उनके चरणों में सत्वर[3] ।।

यहाँ राधिका का श्रीकृष्ण को याद करना स्मृति है।

(७) अमर्ष

'औरै को अभिमान लखि उर उपजै अभिमान ।'

अन्य द्वारा किए गए निंदा, आक्षेप, अनादर-युक्त अभिमान को न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा से युक्त जो अभिमान उत्पन्न होता है, उसे 'अमर्ष' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

रे नृप बालक ! काल-बस, बोलत तोहि न सँभार ।
धनुहीं सम त्रिपुरारि-धनु विदित सकल संसार ।।

यहाँ शिव-धनु-भंग के अपमान-युक्त लक्ष्मण का अभिमान न सहकर उनके प्रति कड़े शब्द कहना अमर्ष है।

(८) गर्व

'जहाँ अधिक उपजै हिये, निज गुन-गन को गर्व ।'

रूप, धन, बल, विद्यादि के कारण सबकी अपेक्षा अपने को अधिक समझना अथवा सबको अपने से घट कर मानना 'गर्व' है।

---

१. मोरनी । २. बादल की ध्वनि । ३. शीघ्र ।

५. अनुभाव

'जिनको निरखत परलपर, रस को अनुभव होत।'

जिन क्रियाओं अथवा चेष्टाओं से रसास्वाद का अनुमान उन्हें 'अनुभाव' कहते हैं।

अनुभाव' शब्द का अर्थ है 'अनुभव करानेवाला'। जो चेष्टाएँ ग बोध कराती हैं, उन्हें 'अनुभाव' कहते हैं।

सभी रसों के अनुभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। इनका उल्लेख वर्णनवाले प्रकरण में रसों के साथ ही किया जायगा। कुछ अनुभावों का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

नके तीन भेद माने गए हैं—(१) सात्विक, (२) कायिक ३) मानसिक।

(१०) हर्ष

'इष्ट वस्तु देखत सुनत, मन प्रसन्न जो होइ।'

इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से उत्पन्न चित्त की प्रसन्नता 'हर्ष' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

कनक-थार[1] भरि मंगलन्हि, कर[2]-कमलन लिय मातु।
चलीं मुदित परिछन[3] करन, पुलक पल्लवित गातु[4]॥

राम के विवाहित होकर आने से कौशल्या के हृदय में जो प्रसन्नता वर्णित की गई है, वही हर्ष संचारी है।

(११) आवेग

'अति डर तें अति नेह तें, उठि चलियतु जो वेग।'

अचानक इष्ट अथवा अनिष्ट की प्राप्ति होने से जो चित्त में घबराहट होती है, उसे 'आवेग' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

बाँधे वन-निधि, नीर-निधि, जलधि, सिंधु, वारीस।
सत्य तोयनिधि, कंपती, उदधि, पयोधि, नदीस॥

यहाँ सेतु-बंध का समाचार सुनकर अनिष्ट की प्राप्ति के कारण रावण का दसो मुख से भिन्न-भिन्न नाम लेकर एक साथ 'समुद्र बाँध लिया' कहना आवेग संचारी है।

---

१. सोने की थाली। २. हाथ। ३ विवाह की एक रस्म। ४. गात्र (शरीर)।

५. अनुभाव

'जिनको निरखत परसपर, रस को अनुभव होत।'

जिन क्रियाओं अथवा चेष्टाओं से रसास्वाद का अनुमान हो, उन्हें 'अनुभाव' कहते हैं।

'अनुभाव' शब्द का अर्थ है 'अनुभव करानेवाला'। जो चेष्टाएँ रस का बोध कराती हैं, उन्हें 'अनुभाव' कहते हैं।

सभी रसों के अनुभाव भिन्न-भिन्न होते हैं। इनका उल्लेख रस-निरूपणवाले प्रकरण में रसों के साथ ही किया जायगा। कुछ प्रमुख अनुभावों का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

इसके तीन भेद माने गए हैं—(१) सात्विक, (२) कायिक और (३) मानसिक।

(१) सात्विक

'सहजहि अंग विकार कह सात्विक भाव बखान।'

शरीर के स्वाभाविक अंग-विकार को सात्विक-भाव कहते हैं।

जिस अन्तःकरण की वृत्ति से रस का प्रकाश होता है, उसे 'सत्व' कहते हैं। उसी सत्व से जो विकार उत्पन्न होते हैं उनका नाम सात्विक-भाव है।

इसके आठ प्रकार हैं—१ स्तंभ, २ स्वेद, ३ रोमांच, ४ स्वरभंग, ५ कंप, ६ वैवर्ण्य, ७ अश्रु और ८ प्रलय। यहाँ पर दो-एक के उदाहरण दिए जाते हैं।

उदाहरण—

(१) संग्राम भूमि विराज रघुपति, अतुल-बल कोसल धनी।
स्रमबिंदु मुख राजीव-लोचन[1], अरुन-तन स्रोनित-कनी[2]॥
भुज-जुगल फेरत सर-सरासन[3], भालु-कपि चहुँदिसि बने।
कह 'दास तुलसी' कहि न सक छबि, सेष जेहि आनन[4] घने॥

यहाँ राक्षसों पर क्रोध करने के कारण रामचंद्र के मुख पर पसीने की बूँदें हो आई हैं, यह 'स्वेद' सात्विक-भाव है।

(२) चकित भीत अचेतन सी बनी। कँप उठी सिगरी जन-मंडली।
कुटिलता करके सुधि कंस की। प्रबल और हुई उर-वेदना॥

यहाँ कंस के भय से गोकुलवासियों का 'कंप' वर्णित है।

(२) कायिक

'तन की कृत्रिम चेष्टा, सो कायिक-अनुभाव।'

शरीर के अंगो द्वारा जो कृत्रिम चेष्टाएँ की जाती हैं, उन्हें 'कायिक-अनुभाव' कहते हैं।

उदाहरण—(बरवै)

बेद[5] नाम तै अँगुरिन खंडि अकास[6]।
पठयो सूपनखाहि लषन के पास॥

यहाँ रामजी ने लक्ष्मण को सूपनखा के नाक-कान काट लेने की बात कृत्रिम चेष्टा द्वारा बतलाई है।

---

१. लाल कमल से नेत्र। २. खून की बूँदें। ३. धनुष। ४. मुख। ५. श्रुति (कान)। ६. नाक (नासिका)।

(३) मानसिक

'मन-संभव मोदादि कहँ, कहिय मानसिक-भाव।'

मन के द्वारा होनेवाले प्रमोदादि मानसिक अनुभाव हैं।

उदाहरण—(दोहा)

सब सिसु एहि मिस प्रेम-बस, परसि मनोहर गात।
तनु पुलकत अति हरष हिय, देखि-देखि दोउ भ्रात॥

यहाँ नगर की शोभा दिखाने के बहाने रामचंद्र के शरीर का स्पर्श करके हर्षित होने में मानसिक-अनुभाव है।

६. विभाव

जो विशेष रूप से रस को प्रकट करते हैं, उन्हें 'विभाव' कहते हैं।

इसके दो अंग हैं—१. आलंबन और २. उद्दीपन।

(१) आलम्बन

'रस उपजै आलंबि जिहि सो आलंबन होइ।'

जिनके आश्रय को ग्रहण कर मनोविकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें आलम्बन कहते हैं।

प्रत्येक रस के आलम्बन भिन्न-भिन्न होते हैं इनका वर्णन प्रत्येक रस के निरूपण के साथ किया जायगा।

(२) उद्दीपन

'रसहिं जगावैं दीप ज्यों उद्दीपन कहि सोइ।

रस को उत्तेजित करनेवाले 'विभाव' को उद्दीपन कहते हैं।

इनके द्वारा आलंबन से उत्पन्न मनोविकार बढ़ता है। प्रत्येक रस के उद्दीपन विभाव भी भिन्न-भिन्न हैं। इनका वर्णन प्रत्येक रस के निरूपण के साथ किया जायगा।

७. रस-निरूपण

रस नौ हैं—१. शृंगार, २. हास्य, ३. अद्भुत, ४. वीर, ५. रौद्र ६. करुण, ७. वीभत्स, ८. भयानक और ९. शांत।

(१) शृंगार

स्थायी-भाव—इस रस का स्थायी-भाव 'रति' है।

आलंबन—नायक और नायिका।

उद्दीपन—वन, उपवन, चंद्र, चाँदनी, पुष्प, शीतल-मंद समीर, वसंतादि ऋतु, सखा, सखी, दूती आदि।

अनुभाव—प्रेमपूर्वक एक दूसरे को देखना, कटाक्ष करना आदि इसके अनुभाव हैं।

संचारी-भाव—कुछ लोग शृंगार में सभी संचारियों के सन्निविष्ट हो सकने का समर्थन करते हैं, किंतु अधिकांश लोग उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर शेष २९ संचारी ही इस रस के अनुकूल मानते हैं।

उदाहरण—(कवित्त)

दोऊ जने दोऊ को अनूप-रूप[1] निरखत,
पावत कहूँ न छवि-सागर को छोर[2] हैं।

---

१. अनुपम सौंदर्य। २. किनारा।

'चिंतामनि' केलि की कलानि के विलासनि[१] सों,
　　　　　　दोऊ जने दोउन के चित्तनि के चोर हैं॥
दोऊ जने मंद-मुसुकानि-सुधा बरषत,
　　　　　　दोऊ जने छके मोद-मद[२] दुहूँ ओर हैं।
सीताजू के नैन रामचंद्र के चकोर भए,
　　　　　　राम-नैन सीता-मुख-चंद्र के चकोर हैं॥

यहाँ पर राम और सीता में जो पारस्परिक प्रेम-भाव है, वही 'रति' स्थायी-भाव है। राम और सीता आलंबन-विभाव हैं। एकांत स्थल, सुंदरता आदि उद्दीपन विभाव हैं। मुसकुराना और टकटकी लगाकर एक-दूसरे को देखना अनुभाव हैं। हर्ष, उत्सुकता आदि संचारी-भाव हैं। अतः यहाँ पूर्ण शृंगार रस है।

(२) हास्य

स्थायी-भाव—हास।

आलंबन—विकृत वचन अथवा विकृत वेश-भूषा इत्यादि।

उद्दीपन—अनुकूल वचन और वेश आदि।

अनुभाव—मुख का फैलना, आँख का मिचना आदि।

संचारी भाव—चपलता, हर्ष, निद्रा, आलस्य, अव-हित्था आदि।

१ [illegible]। २ [illegible]।

उदाहरण—(कवित्त)

हँसि हँसि भजैं देखि दूलह-दिगंबर[१] को,
पाहुनी[२] जे आवैं हिमाचल[३] के उछाह[४] में।
कहै 'पदमाकर' सु काहू सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसोई तहाँ राह[५] में॥
मगन भयेई[६] हँसैं नगन महेस ठाढ़े,
और हँसे वेऊ हँसि-हँसिकै उमाह[७] में।
सीस पर गंगा हँसै भुजनि भुजंगा[८] हँसैं,
हास ही को दंगा[९] भयो नंगा के विवाह में॥

यहाँ पर महादेव को नग्न देखकर लोगों का हँसना, हास स्थायी-भाव है। महादेवजी आलंबन-विभाव हैं। उनका नंगा रूप, विचित्र स्वरूप आदि उद्दीपन-विभाव हैं। लोगों का हँस-हँसकर भागना, लोट-पोट हो जाना आदि अनुभाव हैं। हर्ष, लोगों का महादेव का स्वरूप देखने के लिये दौड़ पड़ने में चपलता, उत्सुकता आदि संचारी-भाव हैं। अतः यहाँ पूर्ण हास्य रस है।

(३) करुण

स्थायी-भाव—शोक।

---

१. नग्न महादेव। २ अतिथि। ३ पार्वती के पिता। ४ उत्सव। [illegible]। ६. आनंदित होकर। ७ उत्साह, चाव। ८ बाँहों पर सर्प हैं। ९. उपद्रव।

आलंबन—मृत बंधु-बांधव अथवा शोचनीय दशा को प्राप्त व्यक्ति।

उद्दीपन—मृतक का दाह, उसकी या उससे संबंध रखनेवाली वस्तुओं का देखना, उसका गुण-श्रवण आदि।

अनुभाव—भाग्य की निंदा, पृथ्वी पर गिर पड़ना, रोना, उच्छ्वास लेना आदि।

संचारी-भाव—निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिंता आदि।

उदाहरण—(सवैया)

मात को मोह, न द्रोह विमान[1] को, सोच न तात[2] के गात दहे[3] को।
प्रान को छोभ[4] न, बंधु-बिछोभ[5] न राज को लोभ, न मोद रहे को॥
एते पै नेक न मानत 'श्रीपति' एते मैं सोच-वियोग सहे को।
तारन भूमि मैं राम कह्यो मोहि सोच विभीषन भूप कहे को॥

लक्ष्मण को शक्ति लग जाने पर रामचंद्र विलाप कर रहे हैं। लक्ष्मण के लिये विलाप करने से शोक स्थायी-भाव है। लक्ष्मण आलंबन-विभाव हैं। लक्ष्मण का चेतना-शून्य शरीर उनकी वीरता, गुण आदि उद्दीपन-विभाव हैं क्योंकि रामचंद्र कहते हैं कि मैंने विभीषण को 'भूप' कह दिया है लक्ष्मण के न रहने पर

१ (विमान) में नहीं जाना। २ पिता (दशरथ) ३ शरीर के जलाने का, इनके स्वर्गवासी हो जाने का। ४ क्षुब्ध खेद। ५ भाई का वियोग।

रावण को मारकर इसे सिंहासनारूढ़ करा सकने में मैं अकेला असमर्थ हूँ। रामचंद्र का विलाप करना अनुभाव है। इस शोक में भी विभीषण को राज्यारूढ़ कराने का ध्यान बना रहने से मति, धृति; और इनके अतिरिक्त वितर्क, स्मृति, विषाद आदि संचारी-भाव हैं।

(४) रौद्र

क्रोध से इंद्रियों की प्रबलता को रौद्र-रस कहते हैं।

स्थायी-भाव—क्रोध।

आलंबन—अपराध करनेवाला व्यक्ति, शत्रु आदि।

उद्दीपन—शत्रु के किए अपराध, उसकी उमंग आदि।

अनुभाव—आँखों की ललाई, त्योरी चढ़ना, ओंठ चबाना आदि।

संचारी-भाव—मद, उग्रता, अमर्ष, स्मृति आदि।

उदाहरण—(सवैया)

बोरौं सबै रघुबंस कुठार की धार में बारन[1] बाजि[2] सरत्थहिं[3]।
बान की बायु उड़ाय कै लच्छन[4] लच्छ[5] करौं अरिहा[6] समरत्थहि॥
रामहिं बाम[7] समेत पठै बन, सोक के भार[8] में भूँजौं भरत्थहिं[9]।
जौ धनु हाथ लियो रघुनाथ[10] तौ आजु अनाथ करौं दसरत्थहि॥

१ हाथी। २ घोड़ा। ३ रथ-समेत। ४ लक्ष्मण। ५ (लक्ष्य) निशाना। ६ शत्रुघ्न। ७ स्त्री (सीता)। ८ भाड़, भरसाँई। ९ भरत। १०. यदि मुझसे लड़ने के लिये राम हाथ में धनुष लें।

शिव-धनु-भंग सुनकर परशुराम राम के ऊपर क्रुद्ध हो रहे हैं। उनका क्रोध स्थायी-भाव है। राम आलंबन-विभाव हैं। परशुराम के गुरु शिव का धनुष तोड़कर गुरु का अपमान करना और इतने पर भी शान के साथ राजपुत्री को ब्याहकर लेते हुए जाना आदि उद्दीपन विभाव हैं। परशुराम का 'रघुवंश का नाश कर डालूँगा' आदि कहना अनुभाव है। परशुराम के उक्त कथन में गर्व, अमर्ष, उग्रता आदि संचारी-भाव हैं। अतः पूर्ण रौद्र-रस है

(५) वीर

स्थायी-भाव—उत्साह।

आलंबन—जिसपर अधिकार प्राप्त करना है, रिपु का उत्कर्ष।

उद्दीपन—मारू आदि का बजना, रण कोलाहल आदि।

अनुभाव—सेना आदि का चलना, हथियारों का चलाना, अंग-स्फुरण नेत्रों में ललाई रोमांच आदि।

संचारी-भाव—हर्ष धृति गर्व, असूया आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

डहडहे डंकन के सबद[1] निसंक होत,
थहथही[2] सत्रुन की सेना जोर सरकी[3]।
'हरिकेस' सुभट-घटान[4] की उमड उन,
चपति को नंद[5] कोप्यो उमग समर[6] को॥

१ डंकों की घोर ध्वनि। २ काँपी। ३ हटी। ४ वीरों का समूह। ५ रैदाराव चंपति के पुत्र (छत्रसाल)। ६ युद्ध।

उदाहरण—(कवित्त)

रानी अकुलानी सब डाढ़त[1] परानी जाहि[2],
सकैं न बिलोकि वेष केसरी-किसोर[3] को।
मींजि-मींजि हाथ धुनि माथ दसमाथ[4]-तिय,
'तुलसी' तिलौ न भयो बाहिर अगार[5] को॥
सब असबाब डारो[6] मैं न काढ़ो[7] त न काढ़ो,
जिय की परी सँभारै सहन-भँडार[8] को।
खीझति मँदोवै[9] सविषाद देखि मेघनाद,
बयो लुनियत[10] सब याही दाढ़ीजार[11] को॥

लंका-दहन के समय का यह दृश्य है। लंका के जलने पर मंदोदरी आदि के घबड़ाने में भय स्थायी-भाव है। हनुमान आलंबन-विभाव हैं। हनुमान का विकराल वेष, घर-असबाब आदि का जलना उद्दीपन-विभाव है। घबड़ाकर भागना, हाथ मींजना, माथा पीटना, जलते हुए असबाब को देखकर एक-दूसरे से उसके बाहर न करने के लिये लड़ना, खीझना आदि अनुभाव हैं। विषाद, चिंता, स्मृति, त्रास आदि संचारी-भाव हैं। अतः यहाँ भयानक-रस है।

१ जलते हुए। २ भागी जाती हैं। ३ हनुमान। ४ रावण। ५ घर से [illegible] बाहर न हो सका। ६ पड़ा हुआ है। ७ निकाला। ८ खजाना। ९ मंदोदरी। १० [illegible] रही हैं, इन्हीं के कर्मों का फल है कि लंका जली। ११ दाढ़ीजार अर्थात् दुष्ट ([illegible])।

नोचना आदि उद्दीपन-विभाव हैं। इन्हें देखकर राजा का इनका वर्णन करने लगना अनुभाव है। मोह, स्मृति आदि संचारी-भाव हैं। अतः पूर्ण वीभत्स-रस है।

(८) अद्भुत

स्थायी-भाव—आश्चर्य या विस्मय।

आलंबन—अलौकिक अथवा आश्चर्योत्पादक वस्तु या कार्य।

उद्दीपन—उसकी विचित्रता या उसके गुणों की महिमा।

अनुभाव—रोमांच, कंप, गद्गद वाणी, स्तंभ, स्वेद, संभ्रम आदि।

संचारी-भाव—वितर्क, भ्रांति, हर्ष, मोह आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

गोपी-ग्वाल-माली[1] जुरे आपुस में कहैं आली!
कोऊ जसुदा[2] के अवतर्यो[3] इंद्रजाली[3] है।
कहै 'पद्माकर' करै को यों उताली[4] जापै,
रहन न पावै कहूँ एको फन खाली है॥
देखे देवताली[5], भई बिधि[6] के खुसाली[7] कूदि
किलकति काली हरि हँसत कपाली[8] है।
जनम को चाली[9] एरी अद्भुत है ख्याली[10] आजु
काली[11] की फनाली[12] पै नचत बनमाली[13] है।

१ समूह। २ यशोदा। ३ जादूगर उत्पन्न हुआ। ४ उतावली। ५ देवताओं का समूह। ६ ब्रह्मा। ७ प्रसन्नता। ८ महादेव। ९ चाल-बाज। १० खेलवाड़ी। ११ कालीनाग। १२ फनों का समूह। १३ कृष्ण।

कालीनाग को नाथकर निकलने पर ब्रजवासी इस प्रकार परस्पर कह रहे हैं। वे कृष्ण का यह कृत्य देखकर जो चकित हो गए हैं, उसमें आश्चर्य स्थायी-भाव है। श्रीकृष्ण का कालीनाग को नाथकर यमुना से निकलना आलंबन है। कृष्ण का कालीनाग के फण पर उछल-उछलकर नाचना आदि उद्दीपन-विभाव हैं। गोपी-ग्वाल का दौड़-दौड़कर एकत्र होना, इस कृत्य के संबंध में अनेक प्रकार की बातें करना, देवताओं आदि का प्रसन्न होना अनुभाव हैं। कृष्ण की जन्म-भर की चालों के स्मरण से स्मृति, देखने के लिये दौड़ने से उत्सुकता, हर्ष, वितर्क आदि सचारी-भाव हैं। अतः पूर्ण अद्भुत-रस है।

(९) शांत

स्थायी-भाव—निर्वेद अथवा शम।

आलंबन—ससार की अनित्यता का ज्ञान, परमात्म-चिंतन आदि।

उद्दीपन—सत्संग, पुण्याश्रम, तीर्थस्थान, एकांत एवं रमणीय वन, योग-क्रिया आदि।

अनुभाव—रोमाच आदि।

सचारी-भाव—धृति, मति, निर्वेद, हर्ष, स्मृति आदि।

उदाहरण—(कवित्त)

रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि[1] हौं।

---

१. मर्यादा।

जानत जहान, मन मेरेहू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत न मानिहौं॥
पाँच[1] की प्रतीति न भरोसो मोहि आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबैहिं परि[2] जानिहौं।
गढ़ि-गुढ़ि छोलि छालि कुंद की-सी भाई बातैं,[3]
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं॥

यहाँ संसार की अनित्यता का ज्ञान ही आलंबन है। सत्संग आदि उद्दीपन हैं। राम के नाम जपना, भीतर-बाहर से एक-सा हो जाने की प्रार्थना करना आदि अनुभाव हैं। मति, धृति, वितर्क आदि संचारी-भाव हैं।

सूचना—इन नौ रसों के अतिरिक्त कुछ आचार्यों ने 'वत्सल' नामक एक और रस माना है। कुछ आचार्य इसे रस नहीं मानते। यह रस है या नहीं, इस विषय पर अधिक कुछ न कहकर केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि हिंदी-साहित्याकाश के सूर्य-चंद्र तुलसीदासजी एवं सूरदासजी ने इस रस को अपनाया है और इसका बड़ा ही सुंदर हृदयग्राही वर्णन किया है। अतएव इस रस का भी परिचय दे देना अप्रासंगिक न होगा।

अपने छोटों पर—भाई-बहन पुत्र-कन्या आदि पर—जो प्रेम किया जाता है उसे 'वात्सल्य' कहते हैं यही वात्सल्य इस रस का स्थायी-भाव है। भाई बहन पुत्र-कन्या आदि के

१ पाँच देवता। २ निश्चय रूप से। ३ खराद पर चढ़ाई हुई, साफ सुथरी।

आश्रय से इस रस की स्थिति पाई जाती है, अतः ये आलंबन विभाव हैं। आलंबन की मनोहर चेष्टा, बाल-लीला आदि एवं उनका सौन्दर्य देखने, उनकी शिक्षा, गुण, तोतली वाणी आदि सुनने से यह प्रेम और भी बढ़ता है, ये उद्दीपन-विभाव हैं। स्नेह से उनको गोद में लेना, आलिंगन करना, सिर सूँघना, सिर पर हाथ फेरना आदि चेष्टाएँ अनुभाव हैं। हर्ष, गर्व, आदि इस रस के संचारी-भाव हैं।

उदाहरण—(सवैया)

कबहूँ ससि माँगत आरि[1] करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि[2] अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा 'तुलसी'-मन-मंदिर में बिहरैं॥

यहाँ पर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को देख उनपर जो प्रेम-भाव उत्पन्न हो रहा है, वही वात्सल्य स्थायी-भाव है। चारों बालक आलंबन हैं। चंद्र के माँगने में हठ, प्रतिबिंब देखकर डरना आदि उद्दीपन-विभाव हैं। माताओं का पुलकित होना अनुभाव है। हर्ष आदि संचारी-भाव हैं।

—— ० ——

१. हठ। २. वास्ते।

(तृतीय प्रकाश)

अलंकार

काव्य की शोभा करनेवाले धर्मों को अलंकार कहते हैं। *

'अलंकार' शब्द का अर्थ है 'गहना'। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को गहना पहना देने से वह और सुंदर ज्ञात होने लगता है, उसी प्रकार अलंकारों से विभूषित काव्य भी सुंदर ज्ञात होने लगता है।

'अलंकार' वस्तुतः बोलने अथवा लिखने की एक शैली है। बोलचाल में किसी बात को श्रोता या पाठक के मन में भली-भाँति बैठा देने के लिये यह आवश्यकता होती है, कि बात कुछ बनाकर कही जाय। इस प्रकार बात के सजाने में जो चमत्कार आ जाता है उसे रीति ग्रंथों में 'अलंकार' के नाम से पुकारते हैं। यह चमत्कार बहुत स्पष्ट होना चाहिए, जिससे पाठक या श्रोता उसे शीघ्रता से समझ लें। यदि इसमें गूढ़ता रहेगी तो वह एक दूसरी ही वस्तु हो जायगी जिसे साहित्य-शास्त्र में 'व्यंग्य' कहते हैं।

* काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते — दंडी

सीधी-सादी बात कहने से वह सुनने में भी उतनी अच्छी नहीं जान पड़ती। इस कारण समाज में, और विशेष करके काव्य-क्षेत्र में, उसे कुछ सजाकर ही कहना पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि कहना हो कि 'राम का मुख सुंदर है' तो उसके स्थान पर 'राम का मुख चंद्रमा सा सुंदर है' कहने से वाक्य रोचक प्रतीत होता है।

वाक्य में 'शब्द' और उसका 'अर्थ' ही मुख्य होता है। इस विचार से अलंकारों के दो विभाग हैं—(१) शब्दालंकार और (२) अर्थालंकार।

(१) शब्दालंकार

जहाँ शब्दों के कारण चमत्कार हो, वहाँ शब्दालंकार होता है।

शब्दालंकारों में केवल शब्दगत चमत्कार होता है, अर्थगत नहीं। इसलिये जिन शब्दों के कारण कविता में चमत्कार होता है, उनके स्थान पर उसी अर्थ के दूसरे शब्द रख देने से वह चमत्कार नष्ट हो जाता है। अतः शब्दालंकारों के चमत्कारोत्पादक शब्द पर्यायवाची शब्दों से बदले नहीं जा सकते। यही कारण है कि इन्हें 'शब्दालंकार' कहते हैं, क्योंकि ऐसे अलंकार केवल शब्दों पर ही आश्रित हैं, उनके अर्थ पर नहीं।

यहाँ पर केवल चार मुख्य शब्दालंकारों का वर्णन किया जाता है—(१) अनुप्रास, (२) यमक (३) वक्रोक्ति और (४) श्लेष।

(१) अनुप्रास

'अच्छर सम पर स्वर असम, अनुप्रासऽलंकार ।'

जहाँ अक्षरों की समानता दिखाई जाय, उनके स्वर मिलें या न मिलें, वहाँ अनुप्रासालंकार होता है।

'अनुप्रास' शब्द का अर्थ है—'अनु' अर्थात् 'बारंबार' और 'प्रास' अर्थात् 'रखना'। जहाँ बार-बार वही वर्ण रखा जाय, वहाँ अनुप्रासालंकार होता है। 'क' से लेकर 'ह' तक व्यंजन और 'अ' से लेकर 'अः' तक स्वर कहलाते हैं। इन सबको अक्षर या वर्ण कहते हैं। ऊपर लक्षण में जो 'स्वर' शब्द लिखा गया है इसका तात्पर्य व्यंजनों में लगनेवाली 'मात्राओं' से है। जैसे—'का' में 'ा' (आकार) 'कि' में 'ि' (इकार) और 'कु' में 'ु' (उकार) की मात्राएं हैं।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

बंदउँ गुरु पद पदुम[1] परागा[2] ।
सुरुचि[3] सुबास[4] सरस[5] अनुरागा[6] ।

यहाँ 'पद', 'पदुम' और 'परागा' शब्दों के आदि में 'प' अक्षर की समानता है और 'सुरुचि', 'सुबास' एवं 'सरस' शब्दों के आदि में 'स' अक्षर की समानता है। 'पद-पदुम परागा' में 'प' का स्वर (मात्रा) तीनों स्थानों में एक है पर 'सुरुचि,

१ पद्म, कमल । २ धूलि । ३ [illegible] । ४ सुगन्धि । ५ फैलता है । ६ प्रेम ।

सुवास, सरस' में दो शब्दों में तो 'सु' है पर तीसरे में 'स'। इसलिये स्वर नहीं मिलता। फिर भी यहाँ अनुप्रासालंकार माना जायगा।

अनुप्रासालंकार के तीन भेद किए गए हैं—(१) छेकानुप्रास, (२) वृत्त्यनुप्रास और (३) लाटानुप्रास।

(१) छेकानुप्रास

'बर्न अनेक कि एक की, जहँ सरि एकै बार।'

जहाँ एक वर्ण की अथवा अनेक वर्णों की समानता केवल एक बार हो, वहाँ छेकानुप्रास होता है।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अनुप्रास का प्रयोग चतुर लोग अपनी चातुरी दिखाने के लिये करते थे, इसीसे इसका नाम 'छेकानुप्रास' है।

उदाहरण—(दोहा)

राधा के वर[१] बैन[२] सुनि, चीनी चकित सुभाय[३]।
दाख[४] दुखी मिसरी मुरी सुधा रही सकुचाय॥

यहाँ 'वर बैन' में 'व' की, 'चीनी चकित' में 'च' की, 'मिसरी मुरी' मे 'म' की और 'सुधा सकुचाय' मे 'स' की—केवल एक ही अक्षर की आवृत्ति है। पर 'दाख दुखी' में 'द ख' दो अक्षरो की समानता दिखाई गई है।

---

१. श्रेष्ठ। २ वचन। ३. स्वभाव से ही। ४. मुनक्का।

सूचना—अनुप्रास केवल शब्दों के आदि में आए हुए अक्षरों से ही नहीं होता, वरन् अंत में आए हुए अक्षरों से भी होता है। ऊपर दिए हुए उदाहरण में 'दैन सुनि' में 'न' का अनुप्रास है और 'निसरी सुरी' में 'न' के अतिरिक्त 'र' का भी अनुप्रास है, पर स्मरण रखना चाहिए, कि अनुप्रास एक सिलसिले से हो, तभी चमत्कार माना जायगा। यदि शब्दों के आदि-अक्षर मिलते हैं, तो आयक्षर ही मिलें और अंत के अक्षर मिलते है, तो वे ही क्रम से मिलें। किसी शब्द के आदि में जो अक्षर है वही अक्षर दूसरे शब्द के अंत में है, तो अनुप्रास नहीं होगा। यथा—'रस सर' में 'र' या 'स' किसी अक्षर का अनुप्रास नहीं माना जायगा; पर यदि 'रस-रास' होगा तो 'र' और 'स' का अनुप्रास होगा।

(२) वृत्ति-अनुप्रास

'वर्न अनेक कि एक को, जहँ सरि कैयो वार।'

जहाँ एक या अनेक वर्णों का समानता कई वार हो, वहाँ वृत्ति-अनुप्रास होता है।

इसका नाम वृत्ति-अनुप्रास इसलिये है कि इसमें अक्षर वीर आदि रसों का विचार करके उनकी वृत्ति के अनुकूल रखे जाते हैं। जैसे—वीर-रस के लिये कुछ कठोर और टेढ़े-मेढ़े शब्दों की आवश्यकता होती है और शृंगार या शान्त-रस के लिये कोमल और सीधे-सुथरे शब्दों की। इसीलिये इस अनुप्रास के तीन विभाग किए गए हैं।

रस के अनुकूल कुछ बँधे हुए वर्णों का व्यवहार करने को

'वृत्ति' कहते हैं। तीन प्रधान रसों—शृंगार, वीर और शांत के अनुकूल यह तीन भागों में बाँटी गई है।

(१) उपनागरिका वृत्ति—यह वृत्ति शृंगार, हास्य और करुण रस में प्रयुक्त होती है। इस वृत्ति में टवर्ग (ट,ठ,ड,ढ) को छोड़कर शेष मधुर वर्ण और सानुनासिक वर्ण प्रयुक्त होते हैं।

(२) परुषा वृत्ति—यह वीर, रौद्र और भयानक-रसों में उपयोगी होती है। इसमें टवर्ग द्वित्व वर्ण (क्क,च्च,ट्ट,त्त, प्प आदि) रेफ और श, ष आदि कठोर वर्ण, लंबे-लंबे समास और संयुक्त वर्ण (क्ख, च्छ ट्ठ, त्थ आदि) अधिक रखे जाते हैं।

(३) कोमला वृत्ति—यह शांत, अद्भुत और वीभत्स-रसों में काम आती है। इसमें य, र, ल, व, स, ह आदि कोमल अक्षर, छोटे-छोटे समास अथवा बिना समास के शब्द काम में लाए जाते हैं।

१ उपनागरिका वृत्ति

उदाहरण—(अर्द्धाली)

धरम धुरीन,[१] धीर, नय-नागर[२]।
सत्य - सनेह - सील-सुख - सागर ॥

यहाँ पर 'ध' और 'स' अक्षर कई वार प्रयुक्त हुए हैं, इससे

---

१ धर्म की धुरा को धारण करनेवाले, धर्मिष्ठ। २ नीति में चतुर,

वृत्यनुप्रास है। ये दोनों वर्ण तथा इनके अतिरिक्त और वर्णों में से अधिक वर्ण मधुर हैं, इससे यह उपनागरिका वृत्ति है।

२. परुषा वृत्ति

उदाहरण—(दोहा)

वक्र[1] वक्र[2] करि पुच्छ[3] करि, रुष्ट[4] रिच्छ[5] कपि-गुच्छ[6]।
सुभट-ठट्ट[7] घन-घट्ट[8] सम, मर्दहि रच्छन तुच्छ[9]॥

यहाँ संयुक्त वर्ण (क्र, च्छ) और द्वित्व वर्ण (ट्ट) कई वार प्रयुक्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त शेष अक्षरों में भी रेफ (मर्दहि) और कर्कश शब्दों की अधिकता है, इससे यह परुषा वृत्ति है।

३ कोमला वृत्ति

स्यामल-गौर[10]-किसोर[11] वर, सुंदर सुखमा-ऐन[12]।

यहाँ 'र' और 'स' अक्षर कई वार प्रयुक्त हुए हैं, इसलिये कोमला वृत्ति है।

सूचना—इन तीनों वृत्तियों को देश के विचार से क्रमशः वैदर्भी, गौडी और पांचाली भी कहते हैं।

---

१ वक्त्र (मुख)। २ टेढ़ा। ३ पूँछ। ४ रुष्ट (क्रुद्ध)। ५ ऋक्ष (भालू)। ६ बंदरों का समूह। ७ वीरों का समूह। ८ बादल की घटा। ९ तुच्छ राक्षसों का मर्दन करते हैं। १० साँवले और गोरे। ११ बारह वर्ष से ऊपर की अवस्थावाले (राम लक्ष्मण)। १२ सुंदरता के घर (अत्यंत सुंदर)।

ऊपर वाक्य (कई शब्दों) की आवृत्ति का उदाहरण दिया गया है अब एक शब्द की आवृत्ति का उदाहरण दिया जाता है—

(२) नंद-चख[1]-चंद चंद-वंस-नभ[2]-चंद,

ब्रज-चंद-मुख-चंद पै अनेक चंद वारौं[3] मैं।

यहाँ 'चंद' शब्द की आवृत्ति है। सभी स्थानों में इसका एक ही अर्थ है, पर भिन्न-भिन्न शब्दों के साथ अन्वय होने से तात्पर्य बदल-बदल गया है।

सूचना—छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास को अँगरेज़ी में 'एलिटरेशन' (Alliteration) कहते हैं।

(२) यमक

'वहै सब्द फिरि-फिरि परै, अर्थ औरई और।'

जहाँ निरर्थक अथवा सार्थक स्वर-व्यंजनों के समूह की आवृत्ति हो, वहाँ यमकालङ्कार होता है।

'यमक' शब्द का अर्थ है 'दो'। इसीलिये इस अलंकार में एक ही आकारवाले शब्दों का बारबार प्रयोग होता है।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

(१) मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ विदेह विदेह विसेखी॥

यहाँ 'विदेह' शब्द दो बार आया है। पहले का अर्थ 'राजा जनक' और दूसरे का अर्थ 'बिना शरीरवाला' है। राजा

१ आँख। २ आकाश। ३ न्योछावर करता हूँ।

(१) वाक्यावृत्ति

उदाहरण—(कवित्त)

ऊँचे घोर मंदर[1] के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर[2] के अंदर रहाती हैं।
कंद-मूल भोग करैं[3] कंद-मूल[4] भोग करैं,
तीन बेर[5] खातीं ते वै तीन बेर[6] खाती हैं।।
भूखन सिथिल अंग[7] भूखन सिथिल अंग[8],
बिजन डोलातीं[9] ते वै बिजन डोलाती[10] हैं।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,[11]
नगन जडातीं[12] ते वै नगन जडाती[13] हैं।।

(२) सिंहावलोकन

उदाहरण—(सवैया)

लाल है भाल सिँदूर भरो मुख-सिंधुर[14] चारु[15] औ बाँह बिसाल है[16]।
साल[17] है सत्रुन को कबिदेव सुसोभित सोमकला[18] धरे भाल है[19]।।

---

१ ऊँचे और विशाल मंदिर (राजमहल)। २ ऊँचे और भयावने पर्वत। ३ बढ़िया मिठाई खाती थीं। ४ कंद और जड़ें। ५ तीन बार (मर्तबा)। ६ तीन बेर (फल)। ७ आभूषणों (के बोझ) से जिनके अंग शिथिल (सुस्त) रहते थे। ८ भूखों से शरीर शिथिल है। ९ पंखा झलती थीं। १० बिना मनुष्य के (अकेली) घूमती हैं। ११ डर। १२ (गहनों में) रत्न जड़वाती थीं। १३ नंगी जाड़ा खाती हैं। १४ हाथी के ऐसा मुख। १५ सुंदर। १६ लंबी। १७ शल्य (दुःखद)। १८ चंद्रमा की कला (द्वितीया का चंद्रमा)। १९ शोभा पाता है।

भाल है दीपत सूरज कोटि सो काटत कोटि कुसंकट-जाल[1] है।
जाल[2] है बुद्धि-विवेकन को यह पारवती को लड़ायतो[3] लाल[4] है॥

इस सवैया के प्रथम चरण में 'विसाल है' है और उसके साथ जो 'साल है' वही अगले चरण के आदि में ग्रहण किया गया है। दोनों में अर्थ अलग-अलग हो गया। इसी प्रकार शेष चरणों मे भी समझ लेना चाहिए।

सूचना—'लाटानुप्रास' में जिन शब्दों की आवृत्ति होती है उनका अर्थ एक ही होता है, पर 'यमक' में अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। यमक को अँगरेजी में 'पन' (Pun) कहते हैं।

(३) वक्रोक्ति

'होय श्लेष सों काकु सों, कल्पित औरै अर्थ।'

जहाँ श्लेष[5] अथवा काकु[6] से कहनेवाले के कथन का सुननेवाला दूसरा ही अर्थ करे वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

'वक्रोक्ति' शब्द का अर्थ है—(वक्र + उक्ति)—उक्ति (कथन) को वक्र (टेढ़ा) करना। इस अलंकार में श्रोता वक्ता के कथन को टेढ़ा-मेढ़ा करके उसका एक दूसरा ही अर्थ ठहराता है।

इसके दो भेद होते हैं (१) श्लेष वक्रोक्ति और (२) काकु-वक्रोक्ति।

१. जंजाल, झगड़ा-बखेड़ा। २. समूह। ३. प्यारा। ४. पुत्र। ५. दो शब्दों के द्वारा। ६. कंठध्वनि को बदलकर।

उदाहरण—(कवित्त)

साहितने[1] तेरे बैर बैरिन को कौतुक[2] सों,
बूझत फिरत कहौ काहे रहे तचिहौं[3]।
सरजा[4] के डर हम आए इतै भाजि[5] तौऽब,
सिंह सों डराय याहू ठौर तें उकचिहौं[6] ॥
'भूषन' भनत वै कहैं कि हम सिव कहैं,
तुम चतुराई सों कहत बात रचिहौ।
सिव जापै रूठै तौ निपट कठिनाई,
तुम बैर त्रिपुरारि[7] के त्रिलोक मैं न बचिहौ ॥

इस कवित्त में शिवाजी के वैरी सरजा (शरजाह, एक उपाधि) और शिव (शिवाजी) से डरने की बात कहते हैं जिसका अर्थ सुननेवाला सिंह और महादेव करके उन्हें उत्तर देता है।

(२) काकु-वक्रोक्ति

'जहाँ कण्ठधुनि भिन्न तें, अर्थ जुदा करि देय।'

जहाँ वक्ता के कहे हुए वाक्य का श्रोता कण्ठ-ध्वनि विकार से भिन्न अर्थ कर दे, वहाँ काकु वक्रोक्ति होती है। 'काकु' शब्द का अर्थ 'कण्ठ की ध्वनि का विकार' है।

---

१. शाहजी के पुत्र, शिवाजी। २ तमाशा। ३ दुखी हो रहे हो। (एक उपाधि) और शारजः (सिंह)। ५ भागकर। ६ आओगे, भागोगे। ७. महादेव।

उदाहरण—(दोहा)

क्यों है रह्यो निरास[1], कहि कहि 'नहिं हरिहैं बिपति।'
राखिय दृढ़ बिस्वास, हरि[2] है नहि हरिहैं बिपति?

कोई विपत्ति का मारा कहता है कि भगवान् 'नहिं हरि हैं विपति' (दुःख को नहीं दूर करेंगे)। दूसरा व्यक्ति इन्हीं शब्दों का केवल कंठ-ध्वनि से दूसरा अर्थ कर देता है—'नहि हरिहैं बिपति।' (क्या विपत्ति नहीं हरण करेंगे ? अर्थात् अवश्य हरण करेंगे)।

सूचना—अपनी उक्ति के वक्र करने में काकु-वक्रोक्ति नहीं होगी। दूसरे द्वारा उसका भिन्नार्थ किया जाना आवश्यक है। अपनी उक्ति के वक्र करने में 'ध्वनि' होती है, जो अलंकारों से भिन्न है। 'वक्रोक्ति' को अँगरेजी में 'क्रुकेड स्पीच' (Crooked Speech) कहते हैं।

( ) श्लेष

'होय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामें अर्थ।'

जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनके एक से अधिक अर्थ होते हों, वहाँ श्लेषालङ्कार होता है।

'श्लेष' शब्द का अर्थ है चिपका हुआ। इस अलङ्कार में जिन शब्दों का प्रयोग होता है उनमें कई अर्थ चिपके रहते हैं।

१ हताश। २ भगवान्।

वाची शब्दों से बदल भी सकते हैं और ऐसा करने पर भी वह चमत्कार बना रहेगा।

अर्थालंकारों की संख्या सौ से भी ऊपर है, पर उनमें से मुख्य-मुख्य अलंकारों का यहाँ वर्णन किया जाता है।

(१) उपमा

'जहँ सादृस तें होत है, सोभा को परकास।'

जहाँ किसी प्रकार की समानता के कारण एक वस्तु दूसरी वस्तु के समान कहा जाय, वहाँ उपमालंकार होता है।

'उपमा' शब्द का अर्थ है—'उप' अर्थात् समीप और 'मा' अर्थात् निर्णय करना (तौलना)। इस अलंकार में दो पदार्थ एक स्थान में रखकर जाँचे जाते हैं और समानता के कारण एक से कहे जाते हैं। इसीसे इसे उपमा कहते हैं।

उपमा में चार अंग होते हैं—१ उपमेय २ उपमान ३ साधारण-धर्म और ४ वाचक

उपमेय—जिस वस्तु का वर्णन किया जाता है उसे उपमेय कहते हैं

उपमान—जिस वस्तु की समता किसी वस्तु से की जाती है उसे उपमान कहते हैं

साधारण धर्म—जिस [illegible] उपमेय और उपमान में समता दिखाई जाती है [illegible] कहते हैं

वाचक—जिस [illegible]

दौरि आए भौंर-से करत गुनी गुन-गान,
सिद्ध-से सुजान सुख सागर सो नियरे[1] ॥
सुरभी[2]-सी खुलन सुकवि की सुमति लागी,
चिरिया-सी जागी चिंता जनक के जियरे[3] ।
धनुष पै ठाढ़े राम रवि-से लसत आज,
भोर[4] के-से नखत[5] नरिंद[6] परे पियरे[7] ॥

इस कवित्त के प्रथम चरण मे 'नयन' उपमेय, 'कमल', उपमान, 'अमल' साधारण-धर्म और 'से' वाचक है। शेष चरणो मे भी पूर्णोपमाएँ हैं, उन्हे स्वयं समझ लेना चाहिए।

(२) लुप्तोपमा

जहाँ उपमा के चारो अंगो (उपमेय, उपमान, साधारण-धर्म और वाचक) में से किसी एक, दो अथवा तीन का लोप हो, वहाँ लुप्तोपमा होती है।

प्रस्तार करने से लुप्तोपमा के १४ भेद हो सकते हैं। किंतु उनमें से उपमेयोपमान लुप्ता धर्मोपमेयोपमान लुप्ता और वाचकोपमेयोपमान लुप्ता मे कोई चमत्कार नहीं हो सकता क्योंकि केवल धर्म या वाचक से अथवा इन दोनो के रहने मे उपमा का निर्वाह ठीक-ठीक नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त 'वाचक धर्मोपमेय लुप्ता' में केवल उपमान रह जाता है। इससे यह आगे आनेवाली

१ निकट। २ गाय। ३ हृदय में। ४ प्रभात। ५ नक्षत्र (तारे)। ६ राजा। ७ पीले।

'रूपकातिशयोक्ति' का विषय हो जाता है। सुतरां यहाँ दस लुप्तोपमाओं का उल्लेख किया जाता है।

१. वाचकलुप्ता

जहाँ उपमेय, उपमान और धर्म रहें, वाचक न हो।

उदाहरण—(चौपाई)

सरद विमल विधु बदन सुहावन।

यहाँ बदन (मुख) उपमेय, विधु (चंद्रमा) उपमान और सुहावन (सुंदर) धर्म कहा गया है। 'सरिस' वाचक का लोप है।

२. धर्मलुप्ता

जहाँ उपमेय, उपमान और वाचक हो, पर धर्म न कहा जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी[1]।
हरषि सुधा सम गिरा उचारी[2]॥

यहाँ गिरा (वाणी) उपमेय, सुधा (अमृत) उपमान और सम वाचक तो हैं, पर 'मधुर' धर्म नहीं कहा गया है।

३. उपमानलुप्ता

जहाँ उपमेय, धर्म और वाचक हो, पर उपमान लुप्त हो।

उदाहरण—(चौपाई)

समर-धीर नहि जाय बखाना।
तेहि सम नहि प्रतिभट जग आना[3]॥

---

१. महादेव। २ कही। ३ अन्य (दूसरा)

यहाँ 'समर-धीर' (रण में डटा रहनेवाला व्यक्ति) उपमेय, 'प्रतिभटता' धर्म और 'सम' वाचक हैं। उपमान है ही नहीं।

४. उपमेयलुप्ता

जहाँ उपमान, धर्म और वाचक हों पर उपमेय न कहा जाय।

उदाहरण—(दोहा)

चंचल हैं ज्यों मीन[1], अरुनारे[2] पंकज[3]-सरिस।
निरखि न होय अधीन, ऐसो नर नागर[4] कवन॥

यहाँ 'नयन' उपमेय का लोप है।

५. धर्म-वाचकलुप्ता

जहाँ उपमेय और उपमान हों, पर धर्म और वाचक न हों।

उदाहरण—(चौपाई)

ईस प्रसाद[5] असीस[6] तुम्हारी।
सब सुतबधू देवसरि-बारी।

यहाँ सुतबधू (पतोहुएँ) उपमेय और देवसरि बारी (गंगा-जल) उपमान कहे गए हैं पर धर्म और वाचक का लोप है।

६. धर्मोपमानलुप्ता

जहाँ उपमेय और वाचक हों पर धर्म और उपमान न कहे जायँ।

उदाहरण—(चौपाई)

आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं

---

१ मछली। २ लाल। ३ कमल। ४ चतुर। ५ कृपा। ६ आशीर्वाद।

यहाँ पुरंदर (इंद्र) उपमेय और सम वाचक तो हैं पर कोई उपमान और धर्म नहीं है।

७. धर्मोपमेयलुप्ता

जहाँ उपमान और वाचक तो हो, पर उपमेय और धर्म न कहे जायँ।

उदाहरण—(सवैया)

त्यौर तिरीछे[1] किए मुनि-संगहि हेरत[2] संभु-सरासन[3], मार[4] से।
त्यौं 'लछिराम' दुहूँकर बान, कमान[5]-सी भौंहैं, सु नक्षत्रतार से॥
सामुहे[6] श्रीमिथिलापति के उठि ठाढ़े महो रस वीर-सिंगार से।
नीलम[7]-चंपक-माल से कौन ? स्वयंवर में मृगराज-कुमार[8] से॥

इस सवैया के प्रथम चरण में 'मार से' मे राम-लक्ष्मण उपमेय और सुंदर धर्म का लोप है। इसी प्रकार शेष तीन चरणो में भी 'रस वीर-शृंगार से', 'नीलम-चंपक-माल से' और 'मृगराज-कुमार से' मे इसे समझ लेना चाहिए।

८ वाचकोपमानलुप्ता

जहाँ उपमेय और धर्म तो हो, पर उपमान और वाचक का लोप हो।

---

१. तिरछी तेवर। २ देखते हैं। ३ शिव-धनुष। ४. कामदेव। ५ धनुष। ६. संमुख। ७. नीलमणि। ८ सिंह के बच्चे।

अतिरिक्त कुछ लोग यह भी मानते हैं, कि उपमान के जिस अंग से उपमेय की समानता दिखाई जाती है यदि वह शब्द द्वारा न कहा जाय, केवल उपमान का सूचक शब्द रख दिया जाय, तो उपमान का लोप समझना चाहिए। यथा—'सूच्छम हरि कटि ऐन' में वस्तुतः 'कटि' उपमेय है। 'हरि' (सिंह) शब्द उपमान नहीं है, उपमान यह तब होता जब इसके साथ एक 'कटि' शब्द और होता। इसलिये यह शब्द केवल उपमान का सूचक है। इस उदाहरण को वे लोग 'वाचकोपमानलुप्ता' का मानते हैं। उपमा को अँगरेजी में 'सिमिली' (Simile) कहते हैं।

(२) अनन्वय

'जहाँ होय उपमेय को, उपमेयै उपमान।'

जहाँ उपमेय और उपमान एक ही हो, वहाँ अनन्वय अलंकार होता है।

'अनन्वय शब्द का खंड है—अन + अन्वय = संबंध अर्थात् दूसरे से संबंध न होना। इस अलंकार में उपमेय का दूसरे (उपमान) के साथ संबंध नहीं दिखलाया जाता। वह स्वयं अपना उपमान बन जाता है। इसका कारण यह होता है, कि उपमेय के समान उत्कृष्ट गुणोंवाला कोई उपमान ही नहीं मिलता, जिसकी उपमा दी जा सके।

उदाहरण— (अर्धाली)

(१) लही न कतहुँ हारि हिय मानी।
इन सम येइ उपमा उर आनी।

यहाँ 'इन सम येइ' में उपमेय स्वयं अपना उपमान बतलाया गया है।

(४) रूपक

'उपमेयहि उपमान जहँ रचै रूप करायँ।'

जहाँ उपमेय को उपमान-रूप कहा जाय, वहाँ रूपकालंकार होता है

'रूपक' शब्द का अर्थ है—'रूप धारण करना'। इस अलंकार में उपमेय उपमान का रूप धारण करता है।

इसके दो भेद होते हैं—१. अभेद और २. तद्रूप।

) अभेद-रूपक

जहाँ बिना निषेध के उपमेय और उपमान अभेद-रूप में कहे जायें।

'बिना निषेध' का तात्पर्य यह है कि आगे कहे जानेवाले 'अपह्नुति-अलंकार' से भिन्नता हो, क्योंकि वहाँ भी 'अभेदता' होती है पर वह निषेधपूर्वक होती है।

उदाहरण—(दोहा)

प्रेम-अमिय मंदरु-बिरहु भरतु पयोधि-गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर-साधु-हित[१], कृपासिंधु रघुबीर॥

यहाँ पर प्रेम में अमृत का, विरह में मंदराचल का और भरत में क्षीर-सागर का अभेद आरोप किया गया है।

इसके तीन भेद हैं—१. सावयव (सांग), २. निरवयव (निरंग) और ३. परंपरित।

---

१. वास्ते लिये।

१. सावयव

जहाँ अवयवों अर्थात् अंगों-सहित उपमान का उपमेय आरोप किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

नारि-कुमुदिनी अवध-सर, रघुबर-विरह-दिनेस।
अस्त भए विकसित भईं निरखि राम-राकेस॥

यहाँ पर आरोप्यमाण (जिनका आरोप किया जाता है वे) कुमुदिनी (रात में खिलनेवाली कुईं), सर (तालाब) दिनेश (सूर्य) तथा राकेश (चन्द्रमा) का और आरोप्य-विषय (जिस पर आरोप किया जाता है वे) नारि (स्त्रियाँ), अवध (अयोध्या) रघुबर-विरह और राम का शब्दों द्वारा स्पष्ट रूप से कथन किया गया है। अतः सावयव-रूपक है।

२. निरवयव

जहाँ अवयवों (अंगो) अर्थात् सामग्री के विना केः उपमान का उपमेय में आरोप किया जाय।

उदाहरण—(दोहा)

अवसि चलिय वन राम पहँ, भरत मन्त्र[1] भल कीन्ह।
सोक-सिंधु बूडत सबहि, तुम अवलंबन दीन्ह॥

यहाँ पर 'सिंधु' (समुद्र) का विना किसी अंग के 'सोक' आरोप किया गया है।

---

1. सलाह।

३. परंपरित

जहाँ प्रधान रूपक का कारण एक दूसरा ही रूपक हो, अर्थात् प्रधान रूपक के लिये पहले किसी अंतर्गत रूपक का निरूपण कर लिया जाय।

'परंपरित' शब्द का अर्थ है 'सिलसिलेवार'। इस रूपक में पहले एक रूपक बनाया जाता है: और उस रूपक के आधार पर एक दूसरे रूपक का वर्णन या निरूपण होता है। इसीसे इसे 'परंपरित' रूपक कहते हैं।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

मोह - महा - घन-पटल-प्रभंजन।
संसय-बिपिन[1]-अनल[2]-सुर-रंजन[3] ॥

यहाँ राम पर 'प्रभंजन' (आँधी) उपमान का आरोप प्रधान रूपक है, पर राम को प्रभंजन कहने के पहले महामोह पर घन-पटल (बादलों के समूह) उपमान का आरोप कर लिया गया है, जो 'राम-प्रभंजन' रूपक का कारण है। इसी प्रकार दूसरे चरण में भी समझ लेना चाहिए।

(२) तद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय को उपमान से भिन्न रखकर भी उसीका रूप और उसीका कार्य करनेवाला कहा जाय।

---

१. वन २ अग्नि। ३ देवताओं को प्रसन्न करनेवाले।

'तद्रूप' शब्द का अर्थ है 'उसका रूप'। इसमें उपमेय उपमान-रूप कहा जाता है, दोनों की एकता नहीं हो जाती।

उदाहरण—(दोहा)

रच्यौ विधाता[1] दुहुँन लै, सिगरी[2] सोभा-साज।
तू सुंदरि! सचि दूसरी, यह दूजो सुरराज॥

इस दोहे में दूसरी शची (इंद्राणी) और दूसरा सुरराज (इंद्र) कहकर उपमेय को उपमान से भिन्न तो रखा गया है, पर उसीका रूप बताया गया है।

सूचना—रूपक को अँगरेजी में 'मेटाफर' (Metaphor) कहते हैं।

(५) दीपक

'वर्न्य अवर्न्यन को जहाँ, एकै धर्म कहाय।'

जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म कहा जाय।

उदाहरण—(दोहा)

गज मद सों नृप तेज सों, सोभा लहत बनाय।

यहाँ नृप-उपमेय और गज-उपमान दोनों का एक धर्म 'शोभा पाना' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त एक प्रकार का और दीपक होता है, जिसे 'आवृत्ति-दीपक' कहते हैं।

---

१. ब्रह्मा। २. समस्त।

आवृत्ति-दीपक

'क्रियापदन को होत जहँ, आवर्तन को जोग ।'

जहाँ क्रिया-पदों की आवृत्ति हो वहाँ 'आवृत्ति-दीपक' होता है।

उदाहरण—(दोहा)

भलो भलाई पै[1] लहै[2], लहै निचाई नीच ।
सुधा[3] सराहिय[4] अमरता गरल[5] सराहिय मीच[6] ॥

यहाँ 'लहै' और 'सराहिय' क्रिया-पद दो-दो बार आए हैं।

इसके तीन भेद होते हैं—१. पदावृत्ति, २. अर्थावृत्ति और ३. पदार्थावृत्ति।

१ पदावृत्ति

'अर्थ दोय पद एक को, आवृत्ति करिए जौन ।'

जहाँ भिन्न भिन्न अर्थवाले पर एक ही आकार के क्रिया-पदों की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(दोहा)

बहैं[7] रुधिर सरिता[8] बहैं[9], किरवानैं[10] कढ़ि कोस[11] ।
बीरन बरहिं[12] बरांगना[13] बरहिं[14] सुभट रन-रोस[15] ॥

१. निश्चय-रूप से २ शोभा पाता है। ३ अमृत। ४ प्रशंसा की जाती है। ५ विष। ६ मृत्यु। ७ बहती है। ८ खून की नदियाँ। ९ चलती हैं। १० तलवारें। ११ म्यान। १२ वरण करती हैं। १३ सुंदर स्त्रियाँ (अप्सराएँ)। १४ जलते हैं। १५ क्रोध।

यहाँ 'बरै' और 'बरहिं' दो क्रिया-पदों की आवृत्ति है, पर इनके अर्थ बदल-बदल गए हैं।

२. अर्थावृत्ति

'सब्द भिन्न पै अर्थ इक, की जहँ आवृति होय।'

जहाँ भिन्न-भिन्न रूप के एकार्थवाची क्रिया-पदों की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

पय-पयोधि[1] तजि अवध विहाई[2]।
जहँ सिय-राम-लखन रहे आई॥

यहाँ 'तजि' और 'विहाई' का एक ही अर्थ है।

३. पदार्थावृत्ति

'पद अरु अर्थ दुहून की, आवृति होवै जौन।'

जहाँ एक ही आकार और अर्थवाले क्रिया-पदों की आवृत्ति हो।

उदाहरण—(दोहा)

तोर्‌यो नृपगन को गरब, तोर्‌यो हर-कोदंड[3]।
राम जानकी-जीव को, तोर्‌यो दुख अखंड॥

यहाँ 'तोर्‌यो' शब्द तीन बार आया है और तीनों स्थानों पर एक ही अर्थ है।

---

१. क्षीर-सागर। २ त्यागकर। ३ महादेव का धनुष।

सूचना—पदावृत्ति और दीपक में एवं पदार्थावृत्ति और आवृत्ति-दीपक में इतना भेद है कि आवृत्ति दीपक में केवल क्रिया-पद प्रयुक्त होते हैं पर इन दोनों में क्रिया-पद नहीं आते। 'दीपक' का अँगरेजी नाम 'इल्युमिनेटर' (Illuminator) है।

(६) उल्लेख

'एकहि बहु विधि बरनिए, सो उल्लेख उलेखि।'

जहाँ एक व्यक्ति का अनेक प्रकार से वर्णन हो, वह उल्लेखालंकार होता है।

'उल्लेख' शब्द का अर्थ है 'चित्रण करना, वर्णन करना।'

इसके दो प्रकार होते हैं—(१) प्रथम उल्लेख (एक व्यक्ति का वर्णन अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से करें)। (२) द्वितीय उल्लेख (एक व्यक्ति का एक ही व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करे)।

(१) प्रथम उल्लेख

'एकहि बहु बहु विधि लखैं।'

जहाँ एक व्यक्ति का अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करें।

उदाहरण—(सवैया)

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित चाहै।
एक कहैं अवतार मनोज[१] को यों तन मे अति सुंदरता है॥
'भूषन' एक कहैं महि इंदु[२] यों राज विराजत बाढ्यो महा है।
एक कहैं नरसिंह[३] है संगर एक कहैं नर-सिंह[४] सिवा है॥

---

१ कामदेव। २ चन्द्रमा। ३ नृसिंह। ४ मनुष्यों में श्रेष्ठ।

इस सवैया में एक ही व्यक्ति शिवाजी का—अनेक व्यक्ति कल्पद्रुम आदि कहकर—अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं।

(२) द्वितीय उल्लेख

'एकहि बरनि बहु रीति।'

जहाँ एक ही व्यक्ति का एक ही व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करे।

उदाहरण—(सवैया)

जोधपुरी अमरावती के अमरेस[1] प्रकास-प्रताप-सँवारे
मौलि[2] महीपन के भुव-मंडल-मंडित छत्र-विलास-वगारे[3]।
संत मुनी द्विज दीनन के 'लछिराम' सहायक पाहरू[4] भारे
मैथिली नैन के चारु चकोर सदा कलपद्रुम राम हमारे।

यहाँ एक ही व्यक्ति कवि, रामचद्र एक ही व्यक्ति का अनेक प्रकार से वर्णन करता है।

सूचना—'उल्लेख' को अँगरेजी में 'रिप्रेजेंटेशन' (Representation) कहते हैं।

(७) स्मरण

'कछु लखि कछु सुनि सोचि कछु, सुधि आवै कछु खास।'

जहाँ पूर्व समय में देखी, सुनी या समझी हुई वस्तु के समान दूसरी वस्तु के देखने, सुनने और सोचने से उसकी याद आ जाय वहाँ स्मरणालङ्कार होता है।

---

१. इन्द्र। २. सिर (श्रेष्ठ)। ३ फैले हुए। ४. द्वारपाल (रक्षक)।

उदाहरण—(कवित्त)

तुम सिवराज ब्रजराज[1]-अवतार आज,
तुमही जगत-काज पोषत-भरत हौ।
तुम्हैं छाँड़ि यातें काहि विनती सुनाऊँ,
मैं तुम्हारे गुन गाऊँ तुम ढीले क्यों परत हौ॥
'भूषन' भनत वहि कुल में नयो गुनाह[2],
नाहक[3] समुझि यह चित्त में धरत हौ।
और बाम्हनन देखि करत सुदामा-सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥

यहाँ अन्य ब्राह्मणों को देखकर सुदामा का तथा 'भूषण' को देखकर भृगु का स्मरण हो आना वर्णित है।

कभी-कभी वैधर्म्यी पदार्थ के देखने से भी स्मरण हो आता है—

ज्यों-ज्यों इन देखियत मूरख विमुख लोग
त्यों-त्यों ब्रजवासी-सुखरासी मन भावै है।
खारे जल छीलर[4] दुखारे[5] अंध कूप देखि,
कालिंदी[6] के कूल-काज[7] मन ललचावै हैं॥
जैसी अब बानिक सों कहत बनै न बैन,
'नागर' न चैन परै प्रान अकुलावै है।
थूहर[8] पलास देखि देखि कै बबूर बुरे,
हाय हरे-हरे वे तमाल सुधि आवै है॥

---

१ विष्णु। २ दोष। ३ व्यर्थ। ४ गड्ढा। ५ दुखदायी। ६ यमुना। ७ तट के लिये। ८ सेहुँड।

शुक आदि का भ्रम हो गया था, जिसका निवारण नकार से किया गया है।

(५) छेकापह्नुति

'छेका लागै और की, गोपी बात दुराय।'

जहाँ किसी गुप्त बात को किसी प्रकार से सूचित करके फिर उसे छिपाया जाय।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अपह्नुति में कोई व्यक्ति अपनी गुप्त बात किसीसे कहता है, पर उसका भेद कोई तीसरा व्यक्ति न समझ ले इसीसे वह अपनी कही हुई बात का दूसरा ही अभिप्राय बतलाकर छिपाता है। इसे 'मुकरी' भी कहते हैं। 'मुकरी' का अर्थ—'पलट जाना', 'बदल जाना' है। जो बात पहले कही गई थी, उसका निषेध करके दूसरे अभिप्राय का आरोप होने से इसे 'मुकरी' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

तिमिर-वंस हर[1] अरुन कर[2] आयो सजनी भोर।
'सिव सरजा[3]' 'चुप रहि सखी, सूरज[4] कुल सिरमौर[5]॥

इस दोहे में 'तिमिर-वंस हर', 'अरुन-कर' और 'आयो भोर' कहने पर श्रोता ने 'शरजाह शिवाजी' कहा, पर वक्ता ने 'सूर्य'

---

१ अंधकार का समूह हरण करनेवाला और तैमूर के वंशजों (मुगलों) को मारनेवाला। २ लाल रंग की किरणोंवाला और (रक्त) लाल हाथोंवाला। ३ शरजाह। ४ सूर्य। ५ वंश में श्रेष्ठ।

हक आदि का भय हो गया था, जिसका निवारण 'रनाई' किया गया है।

(५) छेकापह्नुति

'छेका नारी ओर की, गाँसी बात दुराय।'

जहाँ किसी गुप्त बात को किसी प्रकार से सूचित करके फिर उसे छिपाया जाय।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'चतुर'। इस अपह्नुति में कोई व्यक्ति अपनी गुप्त बात किसीसे कहता है, पर उसका भेद कोई तीसरा व्यक्ति न समझ ले इसीसे वह अपनी कही हुई बात का दूसरा ही अभिप्राय बतलाकर छिपाता है। इसे 'मुकरी' भी कहते हैं। 'मुकरी' का अर्थ—'पलट जाना', 'बदल जाना' है। जो बात पहले कही गई थी, उसका निषेध करके दूसरे अभिप्राय का आरोप होने से इसे 'मुकरी' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

तिमिर-वंस-हर[1] अरुन कर[2] आयो सजनी भोर।
'सिव सरजा'[3]? चुप रहि सखी, सूरज[4] कुल सिरमोर[5]॥

इस दोहे में 'तिमिर-वंस हर', 'अरुन-कर' और 'आयो भोर' कहने पर श्रोता ने 'शरजाह शिवाजी' कहा पर वक्ता ने 'सूर्य

१ अंधकार का समूह हरण करनेवाला और तैमूर के वंशज (मुगलों) को मारनेवाला। २ लाल रंग की किरणोंवाला और रक्त से लाल हाथोंवाला। ३ शरजाह। ४ सूर्य। ५ वंश में श्रेष्ठ।

कहकर बात छिपा ली।

(६) कैतवापह्नुति

'मिस व्याजादिक सब्द दै, कहैं आन को आन।'

जहाँ पर उपमेय का निषेध कैतव, मिस, व्याज आदि शब्दों-द्वारा किया जाय।

'कैतव' शब्द का अर्थ है 'छल', 'बहाना'। इस अपह्नुति में अन्य अपह्नुतियों की भाँति स्पष्ट 'न' से निषेध नहीं किया जाता, वरन् 'कैतव' आदि शब्दों से इसका निषेध जरा घुमा-फिराकर किया जाता है और अर्थ के द्वारा अपह्नुति का बोध होता है, इसीसे इसे 'आर्थी अपह्नुति' भी कहते हैं।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

लखी नरेस बात फुरि साँची।
तिय-मिस मीचु सीस पर नाँची॥

यहाँ पर 'स्त्री के बहाने मृत्यु का सिर पर नाचने' का भाव यह है कि कैकेयी वस्तुतः स्त्री नहीं मृत्यु है। यहाँ 'मिस' शब्द से कैकेयी (तिय) का निषेध और मृत्यु का उसमें स्थापन वर्णित है।

सूचना—अपह्नुति' का अंगरेजी नाम 'कंसीलमेंट' (Concealment) है।

(११) उत्प्रेक्षा

'आन बात को आन में जहँ संभावन होय।'

जहाँ उपमेय (प्रस्तुत) की उपमान (अप्रस्तुत) रूप में संभावना की जाय।

'उत्प्रेक्षा' शब्द का खंड है—उद्+प्र+ईक्षा अर्थात् प्रधानता से बलपूर्वक देखना। इस अलंकार में उपमान से भिन्न जानते हुए भी बलपूर्वक प्रधानता से उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है।

उदाहरण—(दोहा)

लता-भवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग-विमल-विधु, जलद-पटल[1] बिलगाइ[2]॥

यहाँ पर लता-कुंज से राम-लक्ष्मण उपमेय के निकलने (उनके दो निर्मल चंद्रों से भिन्न होते हुए भी उनमें बलपूर्वक इनव संभावना की गई है।

इस अलंकार के वाचक मनु, जनु, मानो, जानो, इव, ख आदि हैं। इसके तीन भेद हैं—१. वस्तु २ हेतु और ३ फल

(१) वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ एक वस्तु (उपमान) की संभावना दूसरी (उपमेय के रूप में हो।

उदाहरण—(दोहा)

सखि सोहत गोपाल के, उर गुंजन की माल।
बाहिर लसति मनो पिए, दावानल की ज्वाल[3]॥

१ बादलों का परदा। २ हटाकर। ३ एक बार श्रीकृष्ण ब्रजवासिय को बचाने के लिये दावाग्नि को पी गए थे।

यहाँ पर श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर पड़ी हुई गुंजो की माला वस्तु (उपमेय) में दावाग्नि की ज्वाला (उपमान) की संभावना की गई है।

(२) हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ अहेतु (जो वस्तुतः हेतु नहीं है) को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय।

उदाहरण—(दोहा)

रवि-अभाव लखि रैनि[1] मैं, दिन लखि चंद-विहीन।
सतत-उदित यहि हेतु जनु, जस प्रताप भुवि[2] कीन॥

किसी राजा के यश-प्रताप के पृथ्वी पर फैलने का वर्णन है। राजा ने पृथ्वी पर रात में सूर्य के उदय न होने और दिन में चन्द्र का प्रकाश न होने के कारण से ही वस्तुतः अपने प्रताप और यश को नहीं फैलाया है किंतु इसे ही हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की गई है।

(३) फलोत्प्रेक्षा

जहाँ अफल (जो वस्तुतः फल न हो) को फल मानकर उत्प्रेक्षा की जाय।

---

१ रात्रि। २ पृथ्वी पर।

उदाहरण—(दोहा)

दुवन-सदन[1] सबके बदन, 'सिव सिव' आठौ जाम।
निज बचिबे को जपत जनु, तुरकौ[2] हर[3] को नाम॥

इस दोहे में मुसलमानों का 'शिव-शिव' (शिवाजी का नाम) कहना अपनी रक्षा के लिये भगवान् शंकर का जप करना नहीं है; पर इसी अफल का फल मानकर उत्प्रेक्षा की गई है।

सूचना—हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा का अंतर क्रिया से ज्ञात होता है। यदि क्रिया किसी हेतु से की गई हो, तो हेतूत्प्रेक्षा और किसी फल-प्राप्ति की इच्छा से की गई हो, तो फलोत्प्रेक्षा होगी। जैसे—राम के शरीर पर रक्त की बूँदें ऐसी शोभित हैं—(१) मानों लाल पक्षी तमाल वृक्ष पर आनंद से बैठे हैं (हेतूत्प्रेक्षा)। (२) मानों लाल पक्षी तमाल वृक्ष पर सघन छाया के लोभ से आकर बैठे हैं (फलोत्प्रेक्षा)।

कभी-कभी उत्प्रेक्षा में वाचक का प्रयोग नहीं होता, इसे गम्योत्प्रेक्षा कहते हैं।

गम्योत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा वाचक शब्दों का लोप हो।

उदाहरण—(चौपाई)

इनहि देखि विधि[1] मन अनुरागा। पटतर-जोग[2] बनावन लागा।
कीन्ह बहुत श्रम अइकि[3] न आए। एहि इरषा बन आनि दुराए[4]।

यहाँ चतुर्थ चरण में 'मानो' वाचक का लोप है।

---

१. शत्रु के घर में। २ तुर्क (मुसलमान) भी। ३ महादेव।

सूचना—'उत्प्रेक्षा' को अँगरेजी में 'पोइटिकल फैंसी' (Poetical Fancy) कहते हैं।

(१२) अतिशयोक्ति

'जहाँ अलौकिक-उक्ति स्यों, वस्तु-प्रसंसा होय।'

जहाँ लोक-सीमा का उल्लंघन करते हुए प्रस्तुत की प्रशंसा की जाय।

'अतिशयोक्ति' शब्द में 'अतिशय' का अर्थ है—'लोक-सीमा का उल्लंघन'। इसलिये जहाँ कोई ऐसी बात कही जाती है, जो लौकिक बात के बाहर हो वहाँ यह अलंकार होता है।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

जेहि बर-बाजि राम असवारा।
तेहि सारदउ न बरनइ पारा॥

संसार में यह बात प्रसिद्ध और मान्य है कि शारदा (सरस्वती) सबका वर्णन कर सकती हैं, पर इसका उल्लंघन करके यहाँ पर उनके द्वारा राम के घोड़े की शोभा का वर्णन न कर सकना कहा गया है।

इसके सात भेद होते हैं—१ रूपकातिशयोक्ति, २ भेदकातिशयोक्ति, ३ सम्बन्धातिशयोक्ति ४ असम्बन्धातिशयोक्ति ५ अक्रमातिशयोक्ति, ६ चपलातिशयोक्ति और ७ अत्यन्तातिशयोक्ति।

(१) रूपकातिशयोक्ति

जहँ केवल उपमान तें, प्रगट होत उपमेय।

जहाँ उपमेय कहे बिना केवल उपमान में ही उपमेय का अभेद दिखाया जाय अर्थात् केवल उपमान के द्वारा ही उपमेय का ज्ञान कराया जाय।

'रूपकातिशयोक्ति' में 'रूपक' शब्द का अर्थ है उपमान का उपमेय का रूप धारण करना। प्राचीन आचार्यों ने इसका पूरा अर्थ यों लिखा है—'जहाँ उपमान, उपमेय को अपने में पचा जाय और उपमान से उपमेय का अभेद होकर केवल उपमान में ही उपमेय का ज्ञान हो जाय।'

उदाहरण—(चौपाई)

राम सीय-सिर सेंदुर देहीं। उपमा कहि न जात कवि केहीं।
अरुन-पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष[1] अहि लोभ अमी[2] के।

इस चौपाई में अरुन-पराग, जलज (कमल), शशि (चंद्रमा), अहि (सर्प) उपमानों द्वारा ही क्रमशः सिंदूर, (राम की) हथेली, (सीता का) मुख और (राम की) भुजा उपमेयों का ज्ञान कराया गया है।

(२) भेदकातिशयोक्ति

'औरै या करिकै जहाँ, बरनत सोई बात।'

जहाँ उपमेय की अभिन्नता होने पर भी भिन्नता कही जाय।

'भेदकातिशयोक्ति' मे 'भेदक' शब्द का अर्थ है भेद करने वाला। इस अलकार मे 'और ही' आदि शब्दो के द्वारा उपमान

---

१. भूषित करता है। २ अमृत।

से उपमेय को भिन्न कहा जाता है। इस अलंकार के वाचक 'और ही', 'न्यारा' आदि हैं।

उदाहरण—(दोहा)

औरै हँसनि, बिलोकिबो, औरै बचन-उदार।
'तुलसी' ग्राम-वधून के, देखे रहत न सँभार ॥

इस दोहे में 'औरै' शब्द के द्वारा हँसने, देखने और बोलने की भिन्नता कही गई है।

(२) संबंधातिशयोक्ति

'जहँ अयोग्य में योग्यता, सब विधि बरनी जाय।'

जहाँ असंबंध में संबंध कहा जाय अर्थात् अयोग्य में भी योग्यता दिखाई जाय।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

फबि फहरैं अति उच्च निसाना।
तिन महँ अटकत विबुध-विमाना ॥

इस अर्द्धाली में झंडों की ऊँचाई इतनी बढ़ाकर कही गई है कि उनमें देवताओं के विमान उलझ जाते हैं। यही अयोग्य में योग्यता या असंबंध में संबंध है।

(३) असंबंधातिशयोक्ति

जहँ अयोग्यता योग्य में, सब विधि बरनी जाय।

जहाँ संबंध में असंबंध कहा जाय अर्थात् योग्य में अयोग्यता दिखाई जाय।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

अति सुंदर लखि मुख सिय तेरो।
आदर हम न करत ससि केरो॥

इस अर्द्धाली में आदर करने योग्य चंद्रमा का आदर न करना कहा गया है।

सूचना—जहाँ शेष, शारदा, वेद, गणेश आदि के शोभा वर्णन न कर सकने की बात कही जाती है, वहाँ भी यही अलंकार होता है। यथा—

जो सुख भा सिय-मातु-मन, देखि राम-वर-वेष।
सो न सकहिं कहि कल्प-सत, सहस-सारदा सेष॥

(५) अक्रमातिशयोक्ति

'कारन कारज को जहाँ, होय क्रम-रहित संग।'

जहाँ कारण और कार्य का विना क्रम के एक साथ वर्णन किया जाय। इसके वाचक 'संग ही', 'साथ ही' आदि हैं।

उदाहरण—(दोहा)

बानासन तें रावरे, बान-बिषम रघुनाथ।
दससिर-सिर धर तें छुटे, दोऊ एकहि साथ॥

यहाँ धनुष से बाणों का और धड़ से सिरों का अलग होना एक साथ कहा गया है।

(६) चपलातिशयोक्ति

'हेतु-ज्ञान ही सों जहाँ, पूरो काज-प्रकास।'

जहाँ कारण के ज्ञान से अर्थात् उसके देखने, सुनने-मात्र से ही कार्य का हो जाना कहा जाय।

'चपलातिशयोक्ति' में 'चपला' शब्द का अर्थ है 'बिजली'। जिस प्रकार बिजली के चमकने और उसकी चमक के देखे जाने में विलंब नहीं होता, उसी प्रकार इस अलंकार में कारण के ज्ञान से ही कार्य हो जाता है।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

तब सिव तीसर नैन उघारा।
चितवत काम भयउ जरि छारा॥

यहाँ शिव का नेत्र खोलना कारण के ज्ञान से ही कामदेव का जल जाना कार्य हो गया है।

(७) अत्यंतातिशयोक्ति

'होत हेतु पीछे जहाँ, होत प्रथम ही काज।'

जहाँ कारण के पहले ही कार्य हो जाय।

उदाहरण—(दोहा)

राजन ! राउर[1]-नाम-जस, सब अभिमत-दातार[2]।
फल-अनुगामी महिप-मनि !, मन-अभिलाष[3] तुम्हार॥

यहाँ पर दूसरी पन्ति का अर्थ है कि फल पहले मिल जाता है, उसके पाने की अभिलाषा पीछे होती है।

---

१ आपका। २ मनोवांछित देनेवाला। ३ मन की इच्छा फल के पीछे पीछे चलती है।

सूचना—'अतिशयोक्ति' को अँगरेजी में 'हाइपरबोल' (Hyperbole) कहते हैं।

(१३) दृष्टांत

'पद-समूह जुग धर्म जहँ, जिमि बिंबहि प्रतिबिंब।'

जहाँ उपमेय और उपमान-वाक्यों तथा उन दोनो के धर्मों में बिंब-प्रतिबिंब-भाव हो।

'दृष्टांत' शब्द का अर्थ 'निश्चय का देखना' है। इस अलंकार में उपमेय-वाक्य कहकर उपमान-वाक्य द्वारा उसका निश्चय कराया जाता है।

उदाहरण—(दोहा)

भरतहिं होइ न राज-मद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥

इस दोहे मे पूर्वार्द्ध उपमेय-वाक्य है और उत्तरार्द्ध उपमान-वाक्य। पहले का धर्म 'विधि-हरि-हर-पद पाकर भी राज-मद न होना' और दूसरे का 'काँजी की बूँदों से भी न बिगड़ना' है, जो बिंब-प्रतिबिंबवत् कहे गए हैं।

सूचना—इसका अँगरेजी नाम 'एक्जेंप्लीफिकेशन' (Exemplification) है।

(१४) अर्थांतरन्यास

'कह्यो अरथ जहँ हीं लियो, और अरथ उल्लेख।'

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थ द्वारा समर्थन किया जाय।

'अर्थांतरन्यास' शब्द में 'अर्थांतर' का अर्थ है 'अन्य अर्थ' और 'न्यास' का अर्थ है 'रखना'। इस अलंकार में एक बात के समर्थन के लिये दूसरे अर्थ का प्रयोग होता है।

उदाहरण—(दोहा)

कारन तें कारज कठिन, होय दोष नहिं मोर।
कुलिस[1] अस्थि[2] तें उपल[3] तें, लोह कराल कठोर॥

इस दोहे में 'कारण से कार्य का कठोर होना' प्रस्तुत अर्थ है। वज्र (जो दधीचि की हड्डी का बना है) के हड्डी से और लोहे के (जो पत्थर से पैदा होता है) पत्थर से अधिक कठोर होने के अप्रस्तुत अर्थ से इसका समर्थन किया गया है।

इसके दो प्रकार हैं—१ विशेष-भेद और २ सामान्य-भेद।

(१) विशेष-भेद

जहाँ किसी सामान्य-अर्थ का समर्थन विशेष-अर्थ से किया जाय।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

राम-भजन बिनु मिटहि न कामा[4]।
थल-बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥

यहाँ पहला चरण सामान्य-वाक्य है और दूसरा विशेष।

---

१ वज्र। २ हड्डी ३ पत्थर। ४ कामना।

(?) सामान्य-भेद

जहाँ किसी विशेष-अर्थ का समर्थन सामान्य-अर्थ द्वारा किया जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

अस कहि चला विभीषन जबहीं। आयु-हीन भे निसिचर तबहीं।
साधु-अवज्ञा[1] तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कर हानी।

यहाँ विभीषण के लौट जाने से निशिचरों का आयुहीन होना विशेष बात है। इसका समर्थन "साधुओं के अपमान से तुरत कल्याण की हानि होती है" इस सामान्य बात से किया गया है।

सूचना—दृष्टान्त-अलंकार और अर्थान्तरन्यास में अंतर यह है कि इसमें दो वाक्यों और उनके धर्मों का उपमेय बिंब प्रतिबिंब-भाव होता है और इसमें सामान्य अथवा विशेष अर्थों का एक दूसरे से समर्थन किया जाता है। अर्थान्तरन्यास का अँगरेजी नाम कारोबोरेशन (Corroboration) है।

(२५) व्याजस्तुति

'स्तुति में जहँ निंदा कढ़े, स्तुति निंदा में होय।'

जहाँ निंदा से स्तुति का अथवा स्तुति से निंदा का तात्पर्य हो।

'व्याजस्तुति' शब्द का अर्थ है बहाने से स्तुति' या 'बहाना

---

१ अपमान।

रूप स्तुति (निंदा)'। इसीसे इस अलंकार में की तो जाती है स्तुति या निंदा, पर तात्पर्य उसके ठीक विपरीत होता है।

(१) निंदा के बहाने स्तुति

उदाहरण—(कवित्त)

पापी एक जात हुतौ गंगा के अन्हाइबे कौं,
तासो कहै कोऊ एक अधम अयान-मैं[1]।
जाहु जनि पंथी! उत विपति बिसेष होति,
मिलैगो महान कालकूट[2] खान-पान मैं॥
कहै 'पदमाकर' भुजंगन बँधैंगे अंग,
संग मैं सुभारो भूत चलैंगे मसान मैं।
कमर कसैंगे गज-खाल ततकाल, बिन
अंबर[3] फिरैगो तू दिगंबर[4] दिसान मैं॥

इस कवित्त मे 'स्नान करनेवाले को जहर खाने को मिलेगा' आदि बातें कहकर गंगाजी की निंदा की गई है, पर 'वे महादेव के समान बना देंगी' यह स्तुति निकलती है।

(२) स्तुति के बहाने निंदा

उदाहरण—(चौपाई)

धन्य कीस[5] जो निज प्रभु काजा। जहँ-तहँ नाचहि परिहरि लाजा।
नाचि कूदि करि लोग रिझाई[6] पति हित करत धरम निपुनाई।

---

1 अज्ञान से युक्त। 2 विष। 3 वस्त्र। 4 नग्न। 5 बंदर।
6 प्रसन्न करके।

यहाँ स्वामी के लिये नाचने-कूदनेवाले बंदरों की स्तुति तो की गई है, पर इसमें कहनेवाले का तात्पर्य उनकी निंदा करना है।

सूचना—इसके पहले भेद को अँगरेजी में 'आर्टफुल प्रेज' (Artful Praise) और दूसरे भेद को 'आर्टफुल ब्लेम' (Artful Blame) कहेंगे। कुछ लोग दूसरे भेद को अँगरेजी का 'आयरनी' (Irony) मानते हैं।

(१६) विभावना

'जहँ कारन अरु कार्य को, वर्नन होय विचित्र।'

जहाँ कारण और कार्य के संबंध में चमत्कारपूर्ण कल्पना की जाय।

'विभावना' शब्द का अर्थ है—'विशेष प्रकार की कल्पना'। इस अलंकार में कारण और कार्य के संबंध में चमत्कारिक कल्पना की जाती है।

उदाहरण—(दोहा)

सुनत लखत स्रुति नैन बिन, रसना[1] बिन रस लेत।
बास नासिका बिन लहै परसै बिना निकेत[2]॥

यहाँ श्रुति (कान) आदि कारणों के बिना सुनना आदि कार्यों की चमत्कारपूर्ण कल्पना की गई है।

इसके छः प्रकार होते हैं।

---

१. जीभ। २. घर, स्थान।

(१) प्रथम विभावना

'बिना हेतु जहँ बरनिए, प्रगट होत है काज।'

जहाँ कारण के अभाव में भी कार्य हो जाय।

उदाहरण—(चौपाई)

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।
आनन[1]-रहित सकल रस-भोगी। बिनु बानी[2] बकता बड़ जोगी।

इस चौपाई में 'पद' आदि कारणों के अभाव में भी 'चलना' आदि कार्यों का होना कहा गया है।

(२) द्वितीय विभावना

'जहाँ हेतु पूरन नहीं, उपजत है पै काज।'

जहाँ अपूर्ण कारण से ही कार्य उत्पन्न हो जाय।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे।
सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥

यहाँ समस्त भुवनों को अपने वश में करने के लिये फूल के धनुष-बाण अपूर्ण कारण हैं।

(३) तृतीय विभावना

कारन प्रतिबंधक रहे हू पै काज की सिद्धि।

जहाँ कारण का प्रतिबंध करनेवाली वस्तु के होते हुए भी कार्य हो जाय।

१ मुख। २ वाणी।

उदाहरण—(अर्द्धाली)

रखवारे हति विपिन उजारा।
देखत तोहि अच्छय[1] जेइ मारा॥

यहाँ 'रक्षक' प्रतिबंधक के होते हुए भी वाटिका उजाड़ना कहा गया है।

(४) चतुर्थ विभावना

'जहँ अहेतु तें होति है, कारज की उतपत्ति।'

जहाँ अहेतु (जो वास्तविक कारण नहीं है उस) से कार्य की उत्पत्ति हो।

उदाहरण—(दोहा)

हँसत बाल के वदन मैं, यौं छवि कछु अतूल[2]।
फूली चंपक-वेलि[3] तें झरत चमेली फूल॥

इस दोहे में 'चपक-लता से चमेली के फूलो का झरना' अहेतु से कार्योत्पत्ति होना है।

(५) पंचम विभावना

'कारन तें उपजै जहाँ, कारज परम विरुद्ध।'

जहाँ विरुद्ध कारण से कार्य की उत्पत्ति हो।

उदाहरण—(कवित्त)

ता दिन अखिल खलभलैं खल खलक[4] मैं,
जा दिन सिवाजी गाजी[5] नेक करखत हैं।

---

१. अक्षयकुमार। २ जिसकी समता न हो, अनुपम। ३ चपे की लता (स्त्री)। ४. पृथ्वी। ५ धर्मयुद्ध वीर।

सुनत नगारन अगार[1] तजि अरिन की,
दार-गन[2] भागत न बार[3] परखत हैं ॥
छूटे बार[4] बार[5] छूटे बारन तें लाल[6] देखि,
'भूषन' सुकवि बरनत हरखत हैं ।
क्यों न उतपात होहि बैरिन के झुंडन में,
कारे घन उमड़ि अंगारे बरखत हैं ॥

यहाँ चौथे चरण मे बादलो से आग बरसना विरुद्ध कारण से कार्योत्पत्ति कही गई है ।

(६) षष्ठ विभावना

'जहाँ काज तें हेतु को, बरनत प्रगट प्रकास ।'

जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति कही जाय ।

उदाहरण—(दोहा)

भयो सिंधु न बिधु[7] सुकवि, बरनन बिना विचार ।
उपज्यो तुव मुख इंदु ते प्रेम-पयोधि-अपार ॥

इस दोहे में इंदु (चंद्र) कार्य से पयोधि (समुद्र) कारण की उत्पत्ति वर्णन की गई है ।

सूचना—'विभावना' को अँगरेजी में 'पिक्यूलियर कॉजेशन' (Pecu ar Cau-a) कहेंगे ।

---

१ महल । २ स्त्रियाँ । ३ दिन (मुहूर्त) । ४ द्वार (घर बार) । ५ बाल (केश) । ६ रत्न । ७ चंद्रमा ।

(१७) व्यतिरेक

'है जहँ वर्न्य अवर्न्य में, कछु विसेष को ज्ञान।'

जहाँ उपमेय के उत्कर्ष अथवा उपमान के अपकर्ष द्वारा उपमेय के गुणाधिक्य का वर्णन हो।

'व्यतिरेक' शब्द में 'वि' का अर्थ है 'विशेषता' अर्थात् असाधारण धर्म और 'अतिरेक' का अर्थ है 'पृथक् भाव'। इसलिये पूरे शब्द का अर्थ हुआ "दूसरे से पृथक् करनेवाला असाधारण धर्म"। इस अलंकार में उपमेय के उत्कर्ष अथवा उपमान के अपकर्ष द्वारा उपमेय को असाधारण धर्मवाला बतला-कर उसे उपमान से पृथक् सिद्ध करते हैं।

(१) उपमेय का उत्कर्ष

उदाहरण—(चौपाई)

(१) संत-हृदय नवनीत-समाना। कहा कबिन पै कहइ न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर-दुख द्रवहि सो संत पुनीता॥

इस चौपाई में 'संत हृदय' उपमेय में नवनीत (मक्खन) उपमान से 'पर के ताप' द्वारा द्रवित होने की अधिकता दिखाई गई है।

(२) प्रगट तीनहूँ लोक मे, अचल प्रभा करि थाप।
जीत्यौ 'राम' दिवाकरहि, श्रीरघुबीर-प्रताप॥

इस दोहे मे राम-प्रताप उपमेय में सूर्य उपमान से 'तीनों लोकों में प्रकाशित होने और अचल प्रभा करने' की अधिकता दिखाई गई है।

कहै 'पद्माकर' सुहेम[1] हय[2] हाथिन के,
हलके[3] हजारन के वितरि[4] विचारै ना ॥
गज-गंज-बकस[5] महीप रघुनाथ राव,
याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना ।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,[6]
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना ॥

यहाँ पर भी पार्वती का गणेश को गोद से न उतारने का कारण राजा का हाथी के धोखे इन्हें भी दान कर देना बताया गया है, जो मिथ्या-पूर्ण है ।

सूचना—जहाँ पर कहा जाता है कि डर को भी डर लगता है' 'लज्जा को भी लज्जा आती है' 'क्रोध को भी क्रोध आ गया' आदि वहाँ भी अत्युक्ति ही समझनी चाहिए । 'अत्युक्ति' को अँगरेजी में 'एक्जैजेरेशन' (Exaggeration) कहते हैं ।

---

१ सोना । २ घोड़ा । ३ समूह ४ वितरित करके ५ हाथियों का समूह दान करनेवाले । ६ पार्वती गणेश की देख भाल कर रही हैं ।

(चतुर्थ प्रकाश)

गुण-दोष

(१) गुण

काव्य की शोभा बढ़ाने के लिये उसमें कुछ गुण रखे जा
हैं। अलङ्कारों के द्वारा काव्य की बाहरी शोभा बढ़ती है, पर गु
के द्वारा काव्य में आंतरिक सुन्दरता आती है। इसलि
यदि कविता में अलङ्कार न भी हों तो भी काम चल सकता है
पर गुणों के न रहने से कविता किसी काम की न रह जायगी
वस्तुत गुण आन्तरिक भावों के पोषक होकर कविता में पा
हैं। मान लीजिए हम किसीसे प्रेम-पूर्ण बातें कर रहे हैं, उ
समय हम कठोर शब्दों का व्यवहार नहीं करेंगे मीठी-मीठी
बातें करेंगे। इसी प्रकार जब हम किसीके ऊपर क्रुद्ध होंगे तो
उससे 'मीठी-मीठी' बातें न करके स्वभावत कड़े शब्दों' का
व्यवहार करेंगे। इसी प्रकार यदि हम बिना किसी प्रकार का
प्रयत्न किए परस्पर बातचीत करते हैं तो 'सीधे-सादे' शब्दों

का व्यवहार करते हैं। लेख लिखते समय या व्याख्यान देने समय चाहे हम शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़कर प्रयुक्त करें, पर बातचीत करते समय हम इस फेर में नहीं पड़ते। मुख्यतः इन्हीं तीन बातों का ध्यान करके काव्य के गुणों को भली-भाँति हृदयंगम किया जा सकता है।

जैसा हम पहले कह चुके हैं—'रस काव्य की आत्मा है'; इसलिये गुणो का प्रयोग भी इन्हीं रसों को ध्यान में रखकर किया जाता है। जितने कोमल भावोंवाले रस हैं, उनमें 'मधुर' शब्दों का प्रयोग करके उनकी कोमलता सुरक्षित रखी जाती है। इसी प्रकार जितने रस उग्र भावोंवाले हैं, उनमें 'कठोर' शब्दों को उपयोग में लाया जाता है और उनकी उग्रता का ठीक-ठीक प्रदर्शन किया जाता है। इसके अतिरिक्त हम पहले यह भी कह आए हैं कि कविता के द्वारा वस्तुतः अपने हृदय का भाव दूसरों पर अभिव्यक्त किया जाता है, इसलिये यदि हम कविता में ऐसे शब्दों का प्रयोग कर दे जो अप्रचलित हैं, तो कविता में क्लिष्टता आ जायगी और कविता का वास्तविक उद्देश सुरक्षित न रह सकेगा। जिस कविता को हम स्वय ही करें और स्वय ही समझें उसके करने से ससार का क्या लाभ? इसलिये कविता में सरल, सीधे सादे, बहुप्रचलित शब्दों का ही अधिकाश में प्रयोग होना चाहिए इससे उसकी रोचकता बढ़ती है। इन बातों का विचार करके तीन गुणों का विधान किया गया है। इनके नाम हैं—१ माधुर्य, २ ओज और ३. प्रसाद।

(चतुर्थ प्रकाश)

गुण-दोष

(१) गुण

काव्य की शोभा बढ़ाने के लिये उसमें कुछ गुण रखे जाते हैं। अलंकारों के द्वारा काव्य की बाहरी शोभा बढ़ती है, पर गुण के द्वारा काव्य में आंतरिक सुंदरता आती है। इसलिये यदि कविता में अलंकार न भी हों तो भी काम चल सकता है, पर गुणों के न रहने से कविता किसी काम की न रह जायगी। वस्तुतः गुण आंतरिक भावों के पोषक होकर कविता में आते हैं। मान लीजिए हम किसीसे प्रेम-पूर्ण बातें कर रहे हैं, उस समय हम कठोर शब्दों का व्यवहार नहीं करेंगे; 'मीठी-मीठी' बातें करेंगे। इसी प्रकार जब हम किसीके ऊपर क्रुद्ध होंगे तो उससे 'मीठी-मीठी' बातें न करके स्वभावतः 'कड़े शब्दों' का व्यवहार करेंगे। इसी प्रकार यदि हम बिना किसी प्रकार का प्रयत्न किए परस्पर बातचीत करते हैं तो 'सीधे-सादे' शब्दों

(१) माधुर्य-गुण

जहाँ ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब भ, म वर्णों द्वारा; ङ, ञ, ण, न, म से युक्त और अनुस्वारवाले अक्षरों की अधिकता से; रेफ और लंबे समासों को त्यागकर छोटे-छोटे समासों के व्यवहार से मधुर-रचना की गई हो, वहाँ 'माधुर्य' गुण माना जाता है। इस गुण का प्रयोग शृंगार, करुण और शांत-रसों में विशेष-रूप से और हास्य एवं अद्भुत में सामान्यतः आवश्यक है।

उदाहरण—(कवित्त)

मंद-मंद चढ़ि चल्यौ चैत-निसि चंद चारु,
मंद-मंद चाँदनी पसारत[1] लतन तें।
मंद-मंद जमुना-तरंगिनि[2] हिलोर लेति,
मंद-मंद मोद[3] मंजु-मल्लिका-सुमन[4] तें॥
'देव' कवि मंद-मंद सीतल सुगंध पौन[5],
देखि छवि छीजत मनोज छन-छन[6] तें।
मंद-मंद मुरली बजावत अधर-धरे,
मंद-मंद निकस्यौ मुकुंद[7] मधुवन तें॥

---

१. फैलाता है। २ नदी। ३ सुगंधि। ४. चमेली का फूल। ५. (पवन) वायु। ६ क्षण-क्षण की शोभा से कामदेव लज्जित होता है। ७. श्रीकृष्ण।

ठट्ठह मन[1] ठट्ठिक ठोर[2] ठट्ठिलियं[3] ।
सद्दिसि[4] दिल्लि भद्दभिभद्द रद्दलियं[5] ॥

इस छंद में भी 'ओज' गुण उत्पन्न करनेवाले पूर्वोक्त प्रकार के वर्णों द्वारा रचना की गई है।

(३) प्रसाद

जहाँ सरल, सीधे-सादे, सुबोध शब्दों के द्वारा वाक्य-रचना की जाती है, वहाँ 'प्रसाद' गुण होता है। इस गुण का उपयोग सभी रसों में होना चाहिए। वस्तुतः माधुर्य और ओज गुण शब्दों की बाहरी बनावट से संबंध रखते हैं और प्रसाद गुण उनके अर्थ से संबंध रखता है। इसलिये इसका प्रयोग सभी रसों के लिये आवश्यक है।

उदाहरण—

उठो हिंदुओ अपने बल को सँभालो।
दशा हिंदी-भाषा की कुछ देख भालो॥
जमाने के धक्कों से इसको बचा लो।
सपूती दिखा दो झपटकर उठा लो॥
स्वहित-प्रेम छाती से इसको लगा लो।
हृदय के सिंहासन पै इसको बिठा लो॥

---

१. यह बात मन में ठानकर। २. उस कठिनता से ठीक करके। ३. रटकर ठट्ट को ठेला। ४. सद्य (तुरत) सब दिशाओं में। ५. दिल्ली की भद्द हुई और वह दबकर रद्द (खराब, नष्ट भ्रष्ट) हो गई।

इसमें सभी शब्द सरल एवं सुबोध हैं। अतः इसमें पूर्ण 'प्रसाद' गुण है।

(२) दोष

काव्य के सभी गुणों से युक्त कविता होने की अपेक्षा उसका सब प्रकार से निर्दोष होना अधिक आवश्यक है, क्योंकि विष की एक बूँद भी अमृत के घड़े को बिगाड़ने के लिये पर्याप्त है। दोषों के आ जाने से कविता के वास्तविक 'रस' का आनंद उठाने मे पाठक या श्रोता को बाधा पहुँचती है। इससे 'रस' की हानि हो जाती है और मुख्य-अर्थ कुछ-का-कुछ समझ लिया जाता है इसलिये दोषों से कविता को मुक्त रखना अत्यंत आवश्यक है यो तो ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसीका भी निर्दोष होना असम्भव है पर फिर भी दोषों से अपने भरसक बचने का प्रयत्न कवि को करना ही पड़ता है।

साहित्यशास्त्रकारों ने बहुत से दोष गिनाए हैं और उनके कई विभाग भी किए हैं पर यहाँ पर उन सबका उल्लेख न करके विशिष्ट दोषों का मूल-स्वरूप संक्षेप में समझा दिया जाता है तदनन्तर उदाहरण देकर विषय को स्पष्ट कर दिया जायगा

कवित्व [illegible] में बहुत [illegible] है [illegible] मधु- रता [illegible] हैं [illegible] भीतर [illegible] रस के [illegible]

भी आ जाते हैं। अस्तु, इस मधुरता के बिना कविता का काम नहीं चल सकता। जब शब्दों की बनावट बहुत टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती है, तो वह कानों को खटकने लगती है, इसे 'श्रुति-कटु' दोष कहते हैं। इसी प्रकार कविता में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि व्याकरण के विरुद्ध, अप्रयुक्त, अश्लील ग्रामीण आदि शब्दों का भी व्यवहार न किया जाय। कोई ऐसा शब्द न रखा जाय जो कवि के तात्पर्य को ठीक-ठीक प्रदर्शित न करता हो अथवा जिसके अर्थ में ही संदेह हो। यही नहीं जिस रस में जैसे शब्दों का प्रयोग होना चाहिए उनका प्रयोग न होना, कुछ शब्दों की कमी रह जाना अथवा व्यर्थ के शब्दों की भरती कर देना भी अनुचित है। पिंगल के नियमों का पालन न कर छंदोभंग कर बैठना, देश-काल और शास्त्रों का ध्यान न रखकर मनमानी बात कह देना, एक बार कही बात की पुनरुक्ति करते रहना, पहले जो बात कह आए हैं उसके विरुद्ध कोई बात कह बैठना अथवा जिस क्रम से किसी प्रसंग का वर्णन कर रहे हैं, उस क्रम का अंत तक निर्वाह न करना आदि भी दोषों के अंतर्गत आते हैं। यहाँ पर विद्यार्थियों को समझाने के लिये कुछ उदाहरण दिए जाते हैं।

उदाहरण—

(१) पर क्या न विषयोत्कृष्टता[1] करती विचारोत्कृष्टता[2]

---

१ विषय की उत्तमता। २ विचार की उत्तमता।

इस दोहे का प्रथम चरण नियमानुसार 'वेसरि' शब्द के 'वे' के पश्चात् पूर्ण होता है, वहाँ पर विश्राम होना चाहिए था; पर ऐसा नहीं है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में दोहे का तीसरा चरण 'वनसी' शब्द के 'वन' के पश्चात् पूरा होता है, वहाँ पर भी विश्राम नहीं है। इसे 'हतवृत्तत्व या छंदोभंग' दोष कहते हैं।

(५) जो नर मेरा मित्र था, है वह कहाँ मनुष्य।

इसमें एक ही पद्य में 'नर' और 'मनुष्य' एकार्थवाची शब्द दो बार व्यर्थ प्रयुक्त हुए हैं, केवल एक से ही काम चल सकता था। इसे 'पुनरुक्ति दोष' कहते हैं।

विस्तार-भय से अधिक उदाहरण नहीं दिए जाते। इन्हीं उदाहरणों से 'दोषों' का स्वरूप विद्यार्थियों की समझ में आ गया होगा।
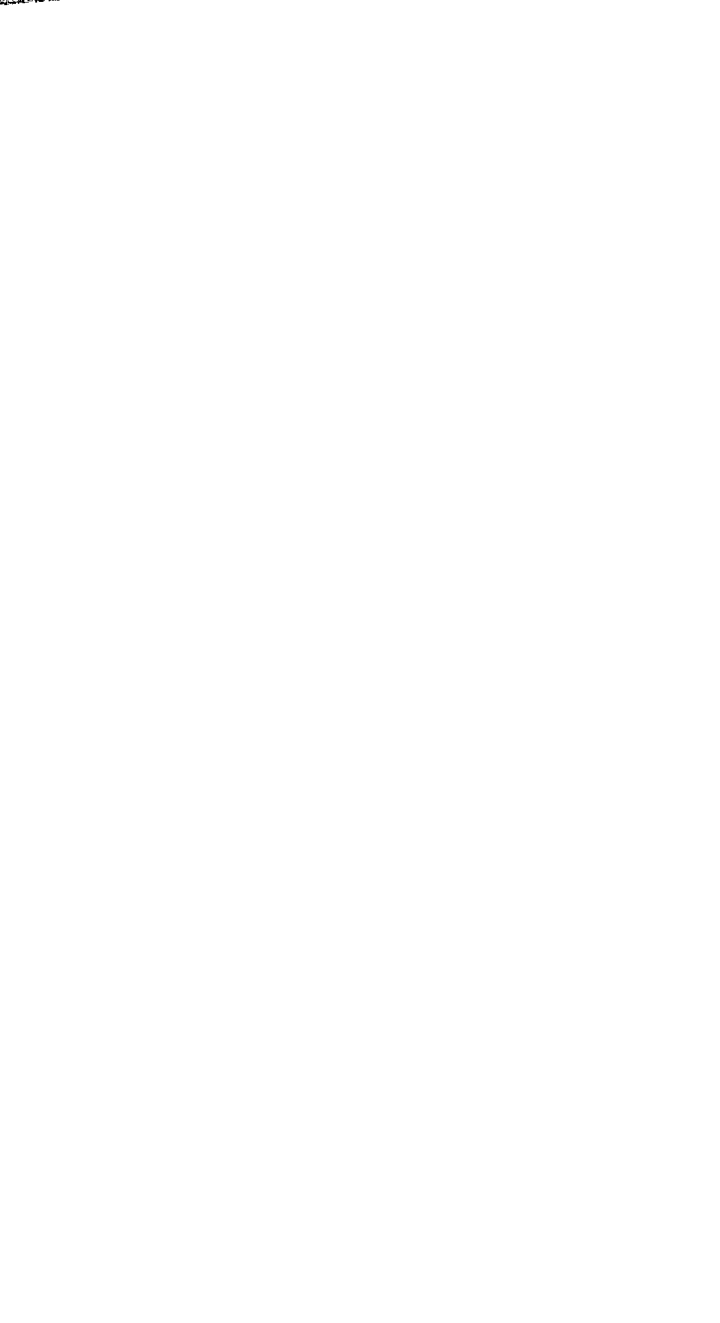
रचना के पढ़ने में मन अधिक लगता है और किसी भी विषय को कण्ठस्थ करने में सुविधा रहती है इसी कारण श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, व्याकरण, कोष, वैद्यक, ज्योतिष आदि सभी विषयों के ग्रंथ पद्य में ही उपलब्ध होते हैं।

(३) लघु-गुरु-नियम

'वर्ण' या 'अक्षर' दो प्रकार के होते हैं—ह्रस्व एवं दीर्घ। वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे 'मात्रा' कहते हैं। अ, इ, उ, ऋ तथा इनसे युक्त व्यंजनों के उच्चारण में जो समय लगता है, उसको एक मात्रा मानी जाती है, और आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ तथा इनसे युक्त व्यंजनों के उच्चारण में जो समय लगता है उसको दो मात्राएं मानी जाती हैं, क्योंकि इनके उच्चारण में एक-मात्रिक अक्षर का अपना दुगुना समय लगता है। [illegible] मात्रिक [illegible] और [illegible] मात्रिक [illegible]

[illegible]

यह पद्य-बद्ध रचना है; क्योंकि इसमें मात्राओं की संख्या नियमित है एवं गति, यति आदि से व्यवस्थित है। साथ ही शब्द-योजना में व्याकरण के क्रम का ध्यान भी नहीं रखा गया है। व्याकरण के क्रम से व्यवस्थित होने पर इसका गद्य-रूप यों होगा—'करतार (ने) विश्व (को) जड़-चेतन (और) गुन-दोष-मय कीन्ह; (किंतु) संत-हंस वारि विकार परिहरि गुन-पय गहहिं'

(२) छंदःशास्त्र

'छंद' शब्द 'पद्य' का समानार्थवाची है। इसी कारण जिस शास्त्र में पद्य-रचना के नियमों तथा लक्षणों एवं उदाहरणों के साथ-साथ पद्य के भेदोपभेदों का सविस्तर विवेचन किया गया हो, उसे 'छंद.शास्त्र' कहते हैं। छंदःशास्त्र के आदि-प्रवर्तक शेषावतार महर्षि पिंगल माने जाते हैं। अतएव इस शास्त्र का नामांतर 'पिंगल' भी है।

छंद शास्त्र भी काव्य का एक अंग है। हमारे पूज्यपाद ऋषि-महर्षियों ने इस शास्त्र को यहाँ तक महत्ता दी है कि यह वेद के 'षडंगों'[1] में गिना जाता है, और इसके बिना वेद का ज्ञान अपूर्ण ही समझा जाता है। पद्य में पद-योजना लयपूर्ण होने के कारण श्रुति-प्रिय एवं मनोहर हो जाती है। इसमें संक्षेप में बहुत सी बातों का समावेश किया जा सकता है। उक्त दोनों कारणों से पद्य की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि पद्य-बद्ध

[1] वेद के छः अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष।

४—कहीं-कहीं संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण दीर्घ नहीं भी माना जाता; जैसे—तुम्हारा, कुल्हाड़ा में 'तु' और 'कु'। संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण यदि दीर्घ हो तो मात्रा में कोई वृद्धि नहीं होती।

५—हलंत के पूर्व का वर्ण दीर्घ माना जाता है और हलंत वर्ण की मात्रा नहीं गिनी जाती। जैसे—राजन्, श्रीमन् में 'ज' तथा 'म' गुरु (द्विमात्रिक) हैं, तथा 'न्' की मात्रा नहीं गिनी जायगी।

६—कहीं-कहीं लय के अनुसार दीर्घ वर्ण को भी ह्रस्व पढ़ना पड़ता है। ऐसे स्थान पर वह वर्ण एक-मात्रिक या लघु ही माना जायगा। जैसे—

'बिनु जर' जारि करइ सोइ छारा।"
जो सुन कहहुँ सत्य मोहि लेहू।'
''अनुप जस जेहि कारन होई।"
'पूजन गौरि सखीं लेइ आई।"

इनमें 'सोइ' 'मोहि' 'जेहि' और 'लेइ' के 'स' 'मो' 'जे' एवं 'ले' को दीर्घ होते हुए भी लघु पढ़ना पड़ेगा, अन्यथा गुरु पढ़ने से प्रत्येक पद में सोलह के स्थान पर सत्रह मात्राएँ हो जायेंगी तथा लय में व्याघात पड़ेगा।

७—संस्कृत वृत्तों में तथा हिंदी के वर्णिक वृत्तों में चरणान्त का अन्तिम लघु वर्ण भी विकल्प से—आवश्यकतानुसार—गुरु माना जाता है। जैसे—

[illegible]

(५) गणों के देवता और फल

गणों के देवता और उनके फल आदि के विषय में पिंगल-शास्त्र में बहुत कुछ विवेचन किया गया है। विस्तार-भय से यहाँ इनका उल्लेख-मात्र किया जाता है।

शास्त्रकारों ने आठ गणों के स्वामी आठ देवता माने हैं, प्रत्येक का फल भिन्न-भिन्न होता है। निम्नलिखित विवरण से यह सब स्पष्ट हो जायगा *।

	गण	देवता	फल
शुभ	मगण	भूमि	श्री
	नगण	स्वर्ग	सुख
	भगण	चंद्र	यश
	यगण	जल	वृद्धि
अशुभ	जगण	सूर्य	रोग
	रगण	अग्नि	मृत्यु
	सगण	वायु	प्रवास
	तगण	व्योम	शून्य

देव-विषयक काव्यों में तो शुभाशुभ का विचार ही नहीं रह जाता। किंतु नर-विषयक काव्यों के प्रारंभ में अशुभ गण वर्जित हैं।

---

* मो भूमिः श्रियमातनोति य जलं वृद्धिं र चाग्निर्मृतिम्।
सो वायुः परदेशदूरगमनं त व्योम शून्यं फलम् ॥
जः सूर्यो रुजमाददाति विपुलं भेंदुर्यशो निर्मलम्।
नो नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानां बुधाः ॥

यह नियम छंद के प्रथम चरण के आदि के तीन अक्षरों के लिये ही है, अन्यत्र नहीं।

गण-वृत्तों में गण-दोष नहीं माना जाता, क्योंकि वहाँ जिस गण का विधान किया जाता है, वह गण शुभ हो चाहे अशुभ लाना ही पड़ता है। जैसे 'दुर्मिल-सवैया' आठ सगणों का होता है। यहाँ आरंभ मे अशुभ 'सगण' का लाना अनिवार्य है। ऐसे अवसर पर ध्यान यही रखना चाहिए कि प्रारंभ में यदि 'ज, र, स, त' लाने पड़ें तो यथासंभव देववाची या मंगलात्मक शब्द रखे जायँ। मात्रिक छंदों के प्रारंभ में तो इनका प्रयोग बचाना ही चाहिए। कुगण के पडने से छंद की रोचकता नष्ट हो जाती है। अतएव काव्य-रचना में कुछ लोग 'द्विगण' का भी विचार करते हैं। एक गण के साथ दूसरे विशेष गण के संयोग से छंद की रोचकता की कई अंशों में रक्षा की जा सकती है। 'द्विगण' के संबंध में विस्तृत विवेचन की आवश्यकता नहीं जान पडती तथापि मगण और नगण ये परस्पर मित्र हैं भगण-यगण दास हैं जगण तगण उदासीन तथा रगण-सगण शत्रु हैं।

६. शुभाशुभ वर्ण एवं दग्धाक्षर

वर्णों में भी [illegible] का ध्यान रखना पड़ता है। स्वर सभी शुभ माने [illegible] हैं। [illegible] में क ख ग, घ च छ ज, त, द ध न [illegible] हैं और सब [illegible] वर्णों में भी 'झ ह, र भ [illegible] ये पाँच तो नितांत दूषित हैं। इनको 'दग्धाक्षर' कहते हैं। पद के आरंभ में इनका लाना [illegible] वर्जित है।

किंतु यदि ये 'गुरु' होकर आवें अथवा किसी देवता वा मंगल-वाची शब्द के प्रारंभ में हो तो उक्त दोष का परिहार हो जाता है।

(७) गति-यति

प्रत्येक छंद की एक 'लय' होती है, उसे 'गति' या 'प्रवाह' भी कहते हैं। छंद की रचना में 'गति' या लय' का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है ; पर इसके लिये कोई विशेष नियम नहीं है। लय का ज्ञान अभ्यास पर ही निर्भर है। लक्षण के अनुसार शुद्ध रहते हुए भी गति का ध्यान न रखने से छंद दोष-युक्त हो जाता है; जैसे—

वरु नरक कर भल वास ताता।
जनि दुष्ट संग देहु विधाता॥

इस छंद में चौपाई के लक्षण के अनुसार १६ मात्राएँ होने पर भी लय का अभाव है, पढ़ने मे रुकावट आ जाती है, पाठ धारा-वाहिक गति से नहीं चलता ; अत दूषित है। ऐसे स्थलों पर जहाँ गति या प्रवाह ठीक न हो, वहाँ 'गति-भंग' दोष माना जाता है। उक्त चौपाई को लय-युक्त करने के लिये हमें इसका रूप यों करना होगा—

वरु भल वास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देहु विधाता॥

इसके सिवाय प्रत्येक पद्य मे चार चरण होते हैं। उनमें से एक चरण का शब्द कटकर या टूटकर दूसरे चरण मे लगने से भी पद्य दूषित होता है, ऐसे दोष को यति-भंग' कहते हैं।

उदाहरण—(दोहा)

दोउ समाज निमिराज[1] रघु-राज[2] नहाने प्रात।
बैठे सब वट-विटप-तर[3], मन मलीन कृस-गात[4]॥

यहाँ 'रघुराज' शब्द दोहे के पहले और दूसरे चरणों में कट-कर 'रघु' एक ओर रह जाता है और 'राज' दूसरी ओर चला जाता है। यही 'यति-भंग' है।

(८) छंदों के भेदोपभेद

छंद दो प्रकार के होते हैं—(१) वैदिक और (२) लौकिक। वैदिक छंदों का हिंदी-भाषा में कोई प्रयोजन नहीं, अतएव उनका वर्णन इस स्थान पर अनुपयुक्त होगा। लौकिक छंद के पुनः दो भेद होते हैं—(१) मात्रिक अथवा जाति और (२) वर्णिक अथवा वृत्त। साधारणतः प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं। चरण को 'पद' अथवा 'पाद' भी कहते हैं। जिन छंदों के चरणों में मात्राओं की संख्या का नियम हो उन्हें मात्रिक छंद या जाति कहते हैं तथा जिनमें वर्णों की संख्या तथा [illegible] के क्रम का नियम हो उन्हें वर्णिक-छंद या वृत्त कहते हैं। [illegible] सबसे गणों का स्प-

[illegible] सुंदर शरीर।
[illegible]
[illegible]
[illegible]

योग किया जाता है। मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंद पुनः तीन-तीन प्रकार के होते हैं—सम, अर्द्धसम और विषम।

(१) मात्रिक-भेद

१—'मात्रिक-सम' वे छंद हैं जिनके चारो चरणों में मात्राओं का क्रम समान हो, जैसे—चौपाई, हरिगीतिका, रोला आदि।

२—'मात्रिक-अर्द्धसम' वे छंद हैं जिनके पहले और तीसरे चरणों में तथा दूसरे एवं चौथे चरणों में बराबर मात्राएँ हों; जैसे—दोहा सोरठा, बरवै आदि।

३—'मात्रिक-विषम' वे छंद हैं जिनके चारो चरणों में मात्राओं का क्रम अलग-अलग हो, जैसे—आर्या।

ऐसे भी मात्रिक छंद हिंदी में बहुत प्रचलित हैं जिनमें चार से अधिक चरण होते हैं। उन्हें भी हम 'मात्रिक-विषम' छंदों में ही गिनते हैं, अतएव 'मात्रिक-विषम' छंद का व्यापक लक्षण यह होगा—"जो छंद मात्रिक-सम या मात्रिक-अर्द्धसम न हो, वे 'मात्रिक विषम' हैं", जैसे—कुंडलिया और छप्पय। ये दोनों छः छः चरणों के छंद है और दो-दो छंदों के मिश्रण से बने हैं। यही इनकी विषमता है।

मात्रिक सम छंद दो प्रकार के होते हैं—(१) साधारण और (२) दंडक। जिन छंदो के प्रत्येक चरण मे ३२ या इससे कम मात्राएँ हों उन्हें 'साधारण' कहते हैं और इससे अधिक मात्रावाले छंद 'दंडक' कहलाते हैं।

(२) वर्णिक-भेद

१—'वर्णिक-सम' छंद वे हैं जिनके चारो चरणों में 'वर्णों' या 'गणों' का क्रम समान हो; जैसे—वसंततिलका, इंद्रवज्रा, मालिनी, त्रोटक, दुर्मिल (सवैया) आदि।

२—'वर्णिक-अर्द्धसम' छंद वे हैं जिनके पहले-तीसरे तथा दूसरे-चौथे चरणों में वर्ण क्रम तथा संख्या समान हो।

३—'वर्णिक-विषम' वे छंद हैं जिनके चारो चरणों में वर्ण-संख्या भिन्न-भिन्न हो *।

वर्णिक-सम के भी दो भेद होते हैं—(१) साधारण और (२) दंडक। २६ वर्णों तक के वृत्त 'साधारण-वृत्त' † कहलाते हैं और इससे अधिक वर्णवाले 'दंडक-वृत्त' कहे जाते हैं। ब्रजभाषा कविता में मनहरण कवित्त, रूप-घनाक्षरी और देव-घनाक्षरी बहुत प्रसिद्ध हैं।

[illegible]

[illegible]
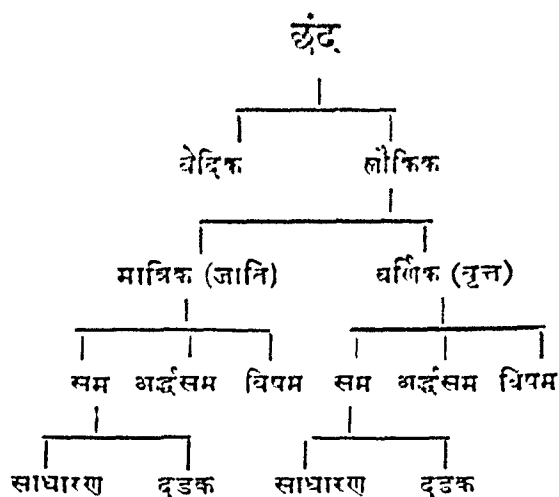
मात्रिक-छंद और वर्णिक-छंद की पहचान के लिये इन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) जिस छंद के चारों चरणों में या तो वर्ण समान हों या केवल वर्ण-क्रम एक-सा हो अर्थात् लघु-गुरु समान क्रम से मिलें, वह वर्णिक-छंद होगा। वर्णिक समवृत्तों में अक्षर तो समान होते ही हैं, साथ ही लघु-गुरु का क्रम एक-सा रहने से मात्राएँ भी बराबर ही होती हैं।

(२) जिस छंद के पदों में गुरु-लघु का कोई क्रम न हो, पर मात्राओं में समानता हो वह मात्रिक छंद होगा।

(९) संख्या-सूचक शब्द

काव्य में अनेक स्थलों पर संख्या सूचित करने का काम पड़ता है। परंतु छंद के अनुरोध से मात्राओं की न्यूनाधिकता अथवा वर्ण की असुविधा के कारण एक, दो, तीन आदि संख्याएँ लिखने में अनेक अड़चनें उठानी पड़ती हैं। अतएव कवि लोग प्रायः संख्या-सूचक शब्द का प्रयोग करते हैं। नीचे एक से बीस तक की संख्याओं के लिये शब्द लिखे जाते हैं—

शून्य—आकाश।

एक—पृथ्वी, चंद्रमा, आत्मा।

दो—आँख, पक्ष, हस्त, सर्प-जिह्वा, नदी-कूल।

तीन—गुण, राम, काल, अग्नि, शिव-नेत्र, ताप।

चार—वेद, वर्ण, आश्रम, ब्रह्मा के मुख, युग, धाम, पदार्थ, पाद।

पाँच—काम-बाण, इंद्रिय, शिव-मुख, पांडव, गति, प्राण, कन्या, यज्ञ, भूत, वर्ग, गव्य।

छः—ऋतु, राग, रस, वेदांग, शास्त्र, ईति, कार्तिकेय के मुख, भ्रमर के पद।

सात—मुनि, स्वर, पर्वत, समुद्र, द्वीप, सूर्य के घोड़े, वार, पुरी, गोत्र, ताल।

आठ—सिद्धि, वसु, प्रहर, नाग, दिग्गज, योग।

नव—[illegible], ग्रह, निधि, द्वार, भक्ति, नाड़ी, [illegible] [illegible]।

दस—दिशा, दशा, अवतार, दोष।

ग्यारह—रुद्र।

बारह—सूर्य, राशि, भूषण, मास ।

तेरह—नदी, परमभागवत, किरण ।

चौदह—भुवन, रत्न, मनु, विद्या ।

पंद्रह—तिथि ।

सोलह—संस्कार, शृंगार, कला ।

सत्रह—इसके लिये कोई शब्द नहीं है । एक और सात के कोई दो संकेत मिलाकर काम निकाला जा सकता है ।

अट्ठारह—पुराण।

उन्नीस—इसके लिये भी कोई शब्द नहीं है। एक और नौ के कोई दो संकेत मिलाकर काम चलाया जाता है ।

बीस—नख ।

उक्त संकेतों से संख्या का काम लेने मे एक बड़ी भारी सुविधा यह है कि हम इनके बदले इनके पर्यायवाची शब्दों का भी उपयोग कर सकते हैं। चंद्रमा के लिये शशि, इंदु आदि, अथवा शिव के लिये रुद्र, शंभु, ईश इत्यादि लिखने में कोई दोष नहीं ।

कविता मे अंक लिखने के लिये आचार्यों ने एक नियम निर्द्धारित कर लिया है कि अंकों की गति दाहनी ओर से बाईं ओर को होती है (अंकाना वामतो गतिः)। यदि हमें १७ का बोध कराना होगा तो 'चंद्र स्वर' न कहकर 'स्वर चंद्र' कहेंगे। शब्द-क्रम से 'स्वर चंद्र' से ७१ का बोध होता है परंतु उक्त नियम के अनुसार १७ का ही बोध होगा।

(१०) तुक

'तुक' कान का विषय है। छंद के चरणांत में एक-से स्वरवाले एक या अनेक अक्षर आ जाते हैं, उन्हीं को 'तुक' कहते हैं। कोई-कोई इन्हें 'अंत्यानुप्रास' के नाम से शब्दालंकारों में गिनते हैं। तुक कविता के लिये अनिवार्य नहीं कहा जा सकता, परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे कविता में लयगत सौंदर्य आ जाता है, पद्य अधिक श्रुति मधुर एवं चित्ताकर्षक हो जाता है। कम-से-कम गीति-काव्य तो बिना तुक के रोचक हो नहीं सकता। मनुष्य की प्रवृत्ति ही तुकमय है। अशिक्षित और गँवार लोगों के जातीय गानों में भी तुक मिला रहता है। तुक का न मिलना कानों को कुछ खटक अवश्य जाता है। इन्हीं सब कारणों से हिंदी कविता में प्रारंभ से ही तुक की प्रधानता रही है। दूसरे हिंदी-कविता का उत्थान और उत्कर्ष वीरगाथा-काव्यों एवं गीति काव्यों से हुआ है। अतएव तुक का मिलना इनमें अनिवार्य था। यही कारण है, कि हिंदी में तुकांत-कविता का प्राधान्य है, अतुकांत कविता बहुत कम परिमाण में है [illegible] लोगों की प्रवृत्ति अँगरेजी और [illegible] अतुकांत कविता [illegible]

[illegible]

तुकांत कविता [illegible]

[illegible]

[illegible]

बहुत थोड़े हैं जिनका तुक [illegible]

के लिये कुछ खास खास छंद ही उपयुक्त होते हैं। संस्कृत के वर्णवृत्त इसके लिये बड़े ही समीचीन प्रतीत होते हैं। उनमें वर्णक्रम इस प्रकार संघटित रहता है, कि स्वभावतः बड़ी मधुर लय आ जाती है। इस लय के कारण तुक का अभाव नहीं खटकता। जिन विद्वानों ने संस्कृत के छंदों का उपयोग कर हिंदी में अतुकांत कविता की है वे पूर्णतया सफल हुए हैं। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'प्रिय-प्रवास' अतुकांत होने पर भी किसी भी तुकांत कविता से रोचकता तथा लय में न्यून नहीं है। परंतु हिंदी के मात्रिक छंद विना तुक के अच्छे नहीं लगते। संभवतः इसका कारण यही हो सकता है कि हमारे कानों को तुकबंदी सुनने का ही अभ्यास पड़ गया है इसलिये बेतुकी कविता उनको एकदम खटकने लगती है।

सारांश यह कि कविता में भाव ही प्रधान है। तुक तो उसके लय-सौंदर्य की वृद्धि के लिये है, और इससे कविता विशेष हृदय-संवेद्य एवं सरस जान पड़ती है। अतएव जहाँ बेतुकी कविता करनी हो वहाँ उसके उपयुक्त छंद चुन लेना चाहिए, अन्यथा लय का अभाव होने से वह पद्य फीका जान पड़ेगा। हमें तो संस्कृत के वर्ण-वृत्त ही इसके लिये विशेष उपयुक्त जान पड़ते हैं।

केवल अंत के अक्षरों का मिलना ही तुक नहीं कहलाता, किंतु उनके स्वर भी मिलने चाहिएँ। लय की सुंदरता के विचार से तुक भी तीन प्रकार का होता है—(१) उत्तम, (२) मध्यम और (३) अधम।

मध्यम

(१) कहा होय उद्यम किए, जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजे खेत कों, करत सलभ निरमूल॥

(२) क्या पाप की ही जीत होती, हारता है पुण्य ही।
इस दृश्य को अवलोककर, तो जान पड़ता है यही॥

अधम

(१) सरनि सरोरुह जल-विहँग, कूजत गुंजत भृंग।
बैर-बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहु रंग॥

(२) रहती मैं अकेली तो क्या भय था मुझे सोच न था तन का अपने।
पर साथ में लाडले जीवन-मूर, ये छोने दुलारे हैं दोनों जने॥

३ – यदि पद्य के अंत में दो लघु (॥) आ पड़ें तो चार मात्राओं का तुक उत्तम, दो का मध्यम और एक का अधम होता है।

उत्तम

विविध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति।
कहुँ चरबी सों चटचटाति कहुँ दहदह दहकति॥

मध्यम

व्योम को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठों पहर॥

की संख्या जोड़ देनी चाहिए। सात मात्राओं की छंद-संख्या—पाँच मात्राओं की छंद-संख्या ८ और छः मात्राओं की १३ के योग के बराबर—अर्थात् २१ होगी। इसी प्रकार और भी जान लेना चाहिए।

(२) सूची के द्वारा मात्रिक छंदों की संख्या की शुद्धता और उनके भेदों में आदि-अंत गुरु अथवा आदि-अंत लघु की संख्या सूचित होती है।

(३) पाताल के द्वारा प्रत्येक मात्रिक-छंद के भेद अर्थात् उसकी संख्या का ज्ञान, लघु-गुरु, संपूर्ण मात्राएँ तथा वर्ण आदि जाने जाते हैं।

(४) यदि कोई कितनी ही मात्रा के प्रस्तार का भेद लिखकर पूछे कि यह कौन-सा भेद है, तो हम उद्दिष्ट द्वारा उसका उत्तर जान सकते हैं।

(५) नष्ट के द्वारा कितनी ही मात्रा के प्रस्तार के किसी भेद का स्वरूप जाना जाता है।

(६) जितनी मात्रा के संपूर्ण प्रस्तार के भेदों अर्थात् छंदों के रूपों में जितने जितने गुरु और जितने जितने लघु के जितने रूप होते हैं, उनकी संख्या दिखलाने को मेरु कहते हैं।

(७) खंडमेरु का भी वही प्रयोजन है जो मेरु का है।

(८) मेरु के द्वारा गुरु और लघु के जितने जितने भेद प्रकाशित होते हैं, पताका के द्वारा उतने-उतने भेदों के योग्य-स्थान जाने जाते हैं।

उर पर जिनके है सोहती मुक्तमाला।
यह नग नलिनी में नैनतारा कहाँ है॥

(१२) प्रत्यय

जिनके द्वारा अनेक प्रकार के छंदों के विचार और संख्या आदि प्रकट किए जाते हैं, उन्हें छंद-शास्त्र मे 'प्रत्यय' कहते हैं। इस शास्त्र में कुल नौ प्रत्यय हैं—१ प्रस्तार, २ सूची, ३. पाताल, ४. उद्दिष्ट, ५. नष्ट, ६ मेरु, ७. खंड-मेरु, ८ पताका और ९ मर्कटी। पिंगल में इन सबपर बहुत ही विस्तृत विवेचन किया गया है। वास्तव मे यह पिंगल का गणित-विभाग है। इन सबके द्वारा हम यही जान सकते हैं कि अमुक मात्रा के छंदों की संख्या कितनी हो सकती है, अमुक भेद कितनी मात्राओं की छंद-संख्या है, अमुक मात्राओं के छंद का अमुक भेद कैसा होगा इत्यादि। परंतु यह विषय आज-कल किसी उपयोग मे नहीं आता। अतएव इसका विशेष विवेचन करना व्यर्थ है, केवल उल्लेख-मात्र किया जाता है, रीति समझाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं।

(१) प्रस्तार मे जितनी मात्रा के जितने भेद हो सकते हैं उनके स्वरूपों को दिखलाया जाता है। प्रस्तार के स्पष्टीकरण से यह जाना जाता है कि एक मात्रा के छंद का १ भेद, दो मात्राओं के छंद के २ भेद, तीन मात्राओं के छंद के ३, चार मात्राओं के छंद के ५ पाँच मात्राओं के छंद के ८ और छ मात्राओं के छंद के १३ भेद होते हैं, इनसे अधिक नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त आगे के छंदों की संख्या जानने के लिये पिछले दो

की संख्या जोड़ देनी चाहिए। सात मात्राओं की छंद-संख्या—पाँच मात्राओं की छंद-संख्या ८ और छः मात्राओं की १३ के योग के बराबर—अर्थात् २१ होगी। इसी प्रकार और भी जान लेना चाहिए।

(२) सूची के द्वारा मात्रिक छंदों की संख्या की शुद्धता और उनके भेदों में आदि-अंत गुरु अथवा आदि-अंत लघु की संख्या सूचित होती है।

(३) पाताल के द्वारा प्रत्येक मात्रिक-छंद के भेद अर्थात् उसकी संख्या का ज्ञान, लघु-गुरु, संपूर्ण मात्राएँ तथा वर्ण आदि जाने जाते हैं।

(४) यदि कोई कितनी ही मात्रा के प्रस्तार का भेद लिखकर पूछे कि यह कौन सा भेद है, तो हम उद्दिष्ट द्वारा उसका उत्तर जान सकते हैं।

(५) नष्ट के द्वारा कितनी ही मात्रा के प्रस्तार के किसी भेद का स्वरूप जाना जाता है।

(६) जितनी मात्रा के संपूर्ण प्रस्तार के भेदों अर्थात् छंदों के रूपों में जितने जितने गुरु और जितने जितने लघु के जितने रूप होते हैं, उनकी संख्या दिखलाने को मेरु कहते हैं।

(७) खंडमेरु का भी वही प्रयोजन है जो मेरु का है।

(८) मेरु के द्वारा गुरु और लघु के जितने जितने भेद प्रकाशित होते हैं पताका के द्वारा उतने-उतने भेदों के योग्य-स्थान जाने जाते हैं।

(९) मर्कटी के द्वारा मात्रा के प्रस्तार में लघु-गुरु, सर्व कला और सब वर्णों की संख्या जानी जाती है।

यद्यपि सब मिला कर ९ प्रत्यय हैं तथापि सूची, प्रस्तार, नष्ट और उद्दिष्ट ये चार ही विशेष प्रयोजनीय हैं। अन्य पाँच प्रत्यय केवल कौतुक हैं। अतएव इनके न जानने से भी कोई विशेष हानि नहीं है।

(१३) मात्रिक-छंद

(१) तोमर

'तोमर राशि[1] गल[2] अंत।'

तोमर छंद का प्रत्येक चरण १२ मात्राओं का होता है। अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होते हैं।

उदाहरण—

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल[3]॥
कोप्यो समर श्रीराम। चल बिसिख[4] निसित[5] निकाम[6]॥

(२) उल्लाला *

'उल्लाला तेरह कला।'

---

१ बारह। २ गुरु-लघु। ३ सर्प। ४ बाण। ५ तेज, चोखा। ६ सुंदर।

* इससे मिलता जुलता एक "उल्लाल" छंद है। किसी-किसी ने इसको भी "उल्लाला" लिख दिया है। यह मात्रिक-अर्द्धसम छंद है। इसके पहले तीसरे पदों में १५ १५ और दूसरे-चौथे पदों में १३ १३ मात्राएँ होती हैं। यथा—

जहँ धन विद्या बरसत रही, सदा अबै बाहा ठहर।
बरसत सबही विधि बेबसी, अब तौ चेतौ वीर-वर॥

उल्लाला छंद के प्रत्येक चरण में १३-१३ मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण—

बात पुरानी उड़ गई, गया पुराना ढंग है।
नई सभ्यता आ गई, चढ़ा नया अब रंग है॥

(३) चौपई

'तिथि गल अंत चौपई माहि।'

चौपई के प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु-लघु (SI) आते हैं।

उदाहरण—

उपवन में अति भरी उमंग।
कलियाँ खिलती हैं बहुरंग॥
पर मिलता है उनको मान।
जो हैं सुखद सुगंध निधान[1]॥

(४) चौपाई

'कल सोरह जत त्रिन चौपाई।'

चौपाई के प्रत्येक पद में १६ मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में जगण (ISI) अथवा तगण (SSI) का निषेध है, अर्थात् गुरु-लघु (SI) न आने चाहिएँ। अंत में एक लघु के होने से लय खटकने लगती है, परंतु दो लघु साथ आ जाने से यह दोष नहीं रहने पाता।

---

१. खज़ाना।

उदाहरण—

जहँ लगि[1] नाथ नेह[2] अरु नाते[3]।
पिय-बिनु तियहिं तरनि[4] तें ताते[5]।।
तनु धनु धाम धरनि सुरराजू[6]।
पति बिहीन सबु सोक-समाजू।।

(५) रोला

'रखिए कल चौबीस, शम्भु[7] सरिता[8] यति रोला।'

इसके प्रत्येक चरण मे ११ और १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। जिस रोला के चारो चरणो में ग्यारहवीं मात्रा लघु हो उसे 'काव्य-छन्द' कहते हैं। प्रायः इसके चरणांत में दो गुरु रखे जाते हैं। पर अंत मे चार लघु या गुरु-लघु-लघु भी मिलता है।

उदाहरण—

नव उज्वल जल धार, हार-हारक-[9]सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद, मध्य मुकुता-मनि पोहति[10]।।
लोल[11] लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन बिबिधि मनोरथ करत मिटावत।।

(६) रूपमाला

'रत्न दिशि कल रूपमाला राखिए गल अंत।'

---

१ तक। २ प्रेम। ३ सम्बध। ४ सूर्य। ५ गर्म। ६ इन्द्र-लोक। ७ ग्यारह। ८ तेरह। ९ हार का हार। १० पिरोती है। ११ चंचल।

चौदह और दस मात्राओं की यति से चौबीस मात्राओं का रूपमाला छंद होता है। अंत में गुरु-लघु (ऽ।) होना चाहिए। आदि में एक त्रिकल (ऽ।) के बाद एक द्विकल का आना आवश्यक जाना पड़ता है। इसका एक नाम 'मदन' भी है।

उदाहरण—

जान हैं बन बादिही[1] गज बाँधिकै बहुतंत्र।
धामहीं किन जपत कामद, राम-नाम सुमंत्र॥
ज्ञान की करि गूदरी दृढ़, तत्त्व तिलक बनाव।
'दास' परमानूप सद्गुन, रूपमाला गाव॥

(७) गीतिका

रत्न[2] रवि[3] कल धरन लग रखि, छन्द रचिए गीतिका।

गीतिका के प्रत्येक पाद में १४ और १२ के विराम से २६ मात्राएँ होती हैं। अंत में लघु गुरु (।ऽ) होता है। इस छंद का मुख्य नियम तो यह है कि प्रत्येक पाद की तीसरी, दसवीं, सत्रहवीं और चौबीसवीं मात्राएँ सदा लघु होती हैं। अंत में रगण (ऽ।ऽ) आ जाने से छंद अति-मधुर हो जाता है।

उदाहरण—

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेत कर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं॥
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बोध-वर्द्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं॥

१ व्यर्थ ही। २ चौदह। ३ बारह।

(८) सार

'यति सोरह रवि, अंते दो गुरु, छंद सार रचु नीको।'

इस छंद के प्रत्येक चरण में १६, १२ के विश्राम से २८ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु आते हैं। इसे 'ललितपद' भी कहते हैं।

उदाहरण—

प्रकटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले।
मंद परे रिपु-गन[1] तारा सम जन[2]-भय-तम[3] उनमूले[4]॥
नसे चोर लंपट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध-बंदी-सूत-चिरैयन[5] मिलि कल-रोर[6] मचायो॥

(९) हरिगीतिका

'शृंगार दिनकर पै विराम, लगंत में हरिगीतिका।'

हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं। १६, १२ पर यति होती है। अंत में लघु गुरु (IS) होना चाहिए। इसका क्रम यों होना चाहिए—२ + ३ + ४ + ३ + ४, ३ + ४ + ५। जहाँ चौकल है वहाँ जगण (ISI) अति निषिद्ध है। अंत में रगण (SIS) श्रुति-सुखद होता है। पाँचवीं, बारहवीं, उन्नीसवीं और छब्बीसवीं मात्राएँ लघु रहने से धारा ठीक रहती है।

१ शत्रु लोग। २ दास। ३ अंधकार। ४ नष्ट हो गया।
५ मागध, बंदी और सूत रूपी पक्षियों ने। ६ मधुर ध्वनि।

उदाहरण—

निज धर्म का पालन करो, चारो फलो की प्राप्ति हो।
दुख-दाह[1], आधि व्याधि[2] सबकी एक साथ समाप्ति हो॥
ऊपर कि नीचे एक भी सुर[3] है नहीं ऐसा कहीं॥
सत्कर्म में रत[4] देख तुमको जो सहायक हो नहीं॥

(१०) वीर

'सोरह तिथि[5] यति अंत गला[6] हो, गाओ वीर छंद अभिराम।'

सोलह और पंद्रह की यति से ३१ मात्राओं का वीर छंद होता है। अंत मे गुरु-लघु होता है। इस छंद को 'आल्हा' भी कहते हैं।

उदाहरण—

सुमिरि भवानी जगदंबा[7] का श्रीसारद के चरन मनाय।
आदि सरस्वति तुमको ध्यावौं, माता कंठ विराजौ आय॥
ज्योति बखानौं जगदंबा कै जिनकी कला बरनि ना जाय।
सरद चंद[8] सम आनन[9] राजै, अति छबि अंग-अंग रहि छाय॥

(११) त्रिभंगी

'दिसि[10] सिधि[11] वसु[12] संगी जन रस[13] रंगी
छंद त्रिभंगी, गान भलौ

१ दुख की जलन। २ मन का और शरीर का कष्ट। ३ देवता। ४ लीन। ५ पंद्रह। ६ गुरु लघु। ७ जगज्जननी पार्वती। ८ शरद ऋतु का चन्द्रमा। ९ मुख। १० दस। ११ आठ। १२ आठ। १३ [illegible]

में दो दलों का एक दोहा और उसके बाद चार पदों का एक रोला छंद जोड़कर कुंडलिया छंद बनता है। दोहे के प्रथम चरण के आदि के कुछ शब्दों या रोला के चतुर्थ चरण के अंतिम शब्दों के साथ, और दोहे के चतुर्थ चरण का रोला के आदि से सिंहावलोकन* होना आवश्यक है। कुंडलिया के पाँचवें चरण के पूर्वार्द्ध में प्रायः कवि का नाम रहता है।

उदाहरण—

चिता-ज्वाल सरीर-बन, दावा[1] लगि-लगि जाय।
प्रगट धुवाँ नहि देखियत, उर-अंतर धुँधुवाय[2]॥
उर-अंतर धुँधुवाय, जरै ज्यों काँच की भट्टी।
जरि गो लोहू माँस, रहि गई हाड की टट्टी॥
कह 'गिरिधर कविराय', सुनो रे मेरे मिना।
वे नर कैसे जियैं जाहि तन व्यापै चिता॥

(१६) छप्पय

'विरचहु छप्पय छंद को, धरि रोला उल्लाल।'

छप्पय भी छः पदों का मात्रिक-विषम-छंद है, इसके आदि में २४–२४ मात्राओं के चार पद रोला के होते हैं। अंतिम दो दल या तो २८-२८ मात्राओं के उल्लाल छंद के होते हैं अथवा २६-२६ मात्राओं के उल्लाला के होते हैं।

---

* देखो पृष्ठ ६०।

१ दावाग्नि। २ हृदय में भीतर-ही-भीतर सुलगती है।

उदाहरण—

(१) नीलांबर परिधान[1], हरित-पट[2] पर सुंदर है।
सूर्य-चंद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर[3] है॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन[4] हैं।
बंदीजन खग-वृंद, शेष-फन सिंहासन हैं॥
करते अभिषेक पयोद[5] हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही, सगुण-मूर्ति सर्वेश[6] की॥

(२) भीति[7]-भंजिनी भुजा, शक्ति दलिता[8] आहों की।
उमड़े उर की आग, दवा दारुण दाहों[9] की॥
शौर्य[10] धैर्य की धरा, सपूती की शुचि शाला[11]।
भाग्य-चक्र की धुरी, विजय की मंजुल माला।
रण चंडी की संगिनी, विभीषिका[12] की धार है।
काली का अवतार है, नहीं! नहीं! तलवार है॥

(१४) वर्णिक-छंद

(१) इंद्रवज्रा

'ता' ता जा गा गा शुभ इंद्रवज्रा।

यह ग्यारह अक्षरों का वर्णवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'त त ज ग ग' (ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ) होता है।

---

१ पहनने का नीला वस्त्र। २ हरा कपड़ा। ३ समुद्र करधनी है। ४ गहना। ५ बादल। ६ ईश्वर। ७ भय। ८ कुचली हुई। ९ जलन। १० शूरता। ११ पवित्र घर। १२ [illegible]।

में दो दलों का एक दोहा और उसके बाद चार पदों का एक रोला छंद जोड़कर कुंडलिया छंद बनता है। दोहे के प्रथम चरण के आदि के कुछ शब्दों या रोला के चतुर्थ चरण के अंतिम शब्दों के साथ, और दोहे के चतुर्थ चरण का रोला के आदि से सिंहावलोकन* होना आवश्यक है। कुंडलिया के पाँचवें चरण के पूर्वार्द्ध में प्रायः कवि का नाम रहता है।

उदाहरण—

चिंता-ज्वाल सरीर-बन, दावा[1] लगि-लगि जाय।
प्रगट धुवाँ नहिं देखियत, उर-अंतर धुँधुवाय[2]॥
उर-अंतर धुँधुवाय, जरै ज्यों काँच की भट्टी।
जरि गो लोहू माँस, रहि गई हाड़ की टट्टी॥
कह 'गिरिधर कविराय', सुनो रे मेरे मिता।
वे नर कैसे जियँ जाहि तन व्यापै चिंता॥

(१६) छप्पय

'विरचहु छप्पय छंद को, धरि रोला उल्लाल।'

छप्पय भी छः पदों का मात्रिक-विषम-छंद है, इसके आदि में २४—२४ मात्राओं के चार पद रोला के होते हैं। अंतिम दो दल या तो २८-२८ मात्राओं के उल्लाल छंद के होते हैं अथवा २६-२६ मात्राओं के उल्लाला के होते हैं।

---

* देखो पृष्ठ ६०।

१ दावाग्नि। २ हृदय में भीतर-ही-भीतर सुलगती है।

सद्धर्म का मार्ग तुम्हीं बताते।
तुम्हीं अघों[1] से हमको बचाते॥
हे ग्रंथ! विद्वान तुम्हीं बनाते।
तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते॥

(३) वंशस्थविलम्

'विचार वंशस्थ ज ता ज रा करो'

यह बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज र' (ISI SSI ISI SIS) होता है।

उदाहरण—

सशांति आते उड़ते निकुंज में।
सशांति जाते ढिग[2] थे प्रसून[3] के।
बने महा-नीरव[4]-शांत-संयमी।
सशांति पीते मधु को मिलिंद[5] थे॥

(४) त्रोटक

'रख चार स त्रोटक को रचिए'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार सगण (||S ||S |S ||S) होते हैं।

उदाहरण—

जिनने गुण-सागर नागर हैं।
कहते यह बात उजागर[7] हैं॥

---

१ पापों। २ पास। ३ फूल। ४ मौन। ५ भौंर। ६ चतुर। ७ प्रसिद्ध।

उदाहरण—

आधार जिनका कोई नहीं है।
हा ! दुःख ही दुःख सभी कहीं है॥
तू ही उन्हें आकर गोद लेती।
हे मृत्यु ! तू ही चिर-शांति[1] देती॥

(२) उपेंद्रवज्रा

'ज ता ज गा गाः उपेंद्रवज्रा'

यह भी ग्यारह अक्षरों का वर्ण-वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'ज त ज ग ग' (ISI SSI ISI S S) होता है। 'इंद्रवज्रा' का पहला अक्षर लघु कर देने से ही उपेंद्रवज्रा वृत्त बनता है।

उदाहरण—

बलाभिमानी धरणी-धनेश[2]।
कहो, कहाँ हैं अब वे जनेश[3] ?
चले गए हैं सब आप-आप।
हुआ न दो ही दिन का प्रताप!

इस छंद के पदांत के वर्ण विकल्प से दीर्घ ही माने जायँगे।

सूचना—'इंद्रवज्रा' और 'उपेंद्रवज्रा' के चरणों के मिलने से कई प्रकार के छंद बनते हैं, जिन्हें 'उपजाति' कहते हैं। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

---

१ बहुत दिनों तक रहनेवाली शांति। २. पृथ्वी और धन के स्वामी। ३ राजा।

उदाहरण—

मन! रमा[1], रमणी[2], रमणीयता।
मिल गई यदि ये विधियोग[3] से॥
पर जिसे न मिली कविता-सुधा।
रसिकता सिकता[4]-सम है उसे॥

(७) मोतियदाम

'धरो शुभ मोतियदाम ज चार'

इसके प्रत्येक चरण में चार जगण (।ऽ। ।ऽ। ।ऽ। ।ऽ।) रहते हैं।

उदाहरण—

अदेवन की उर आनि अनीति।
निबाहन को सुर-पालन-रीति॥
सुधारन को जन को अधिकार।
धर्‌यो हरि वामन को अवतार॥

(८) वसंततिलका

'गाओ वसन्ततिलका त भ जा ज गा गो'

यह चौदह अक्षरों का छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 'त भ ज ज ग ग' (ऽऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ) रहता है।

उदाहरण—

रे क्रोध जो सतत[5] अग्नि बिना जलावे।
भस्मावशेष नर के तनु को बनावे।

१ लक्ष्मी। २ स्त्री। ३ संयोग से दैवात्। ४ बालू। ५ बराबर, निरंतर।

अब यद्यपि दुर्बल आरत[1] है।
पर भारत के सम भारत है॥

(५) भुजंग-प्रयात

'य हैं चार हो ये भुजग-प्रयातम्'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार यगण (ISS ISS ISS ISS) रहते हैं।

उदाहरण—

कहूँ किन्नरी[2] किन्नरी[3] ले बजावें।
सुरी[4] आसुरी[5] बाँसुरी गीत गावें॥
कहूँ यक्षिनी[6] पक्षिनी[7] ले पढ़ावें।
नगी कन्यका[8] पन्नगी[9] को नचावें॥

(६) द्रुतविलम्बित

'द्रुतविलम्बित के न भ भा र है'

इसमें बारह अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरण में 'न भ भ र' (III SII SII SIS) होता है। इसे 'सुंदरी' भी कहते हैं।

---

१ आर्त, दुखी। २ किन्नरों की कन्याएँ। ३ सारंगी। ४ देवताओं की कन्याएँ। ५ असुरों की कन्याएँ। ६ यक्षों की कन्याएँ। ७ पक्षी, मैना, कोकिल आदि। ८ पार्वत्य देशों की कन्याएँ। ९. सर्पों की कन्याएँ।

उदाहरण—

मन ! रमा[1], रमणी[2], रमणीयता ।
मिल गईं यदि ये विधियोग[3] से ॥
पर जिसे न मिली कविता-सुधा ।
रसिकता सिकता[4]-सम है उसे ॥

(७) मोतियदाम

'धरो शुभ मोतियदाम ज चार'

इसके प्रत्येक चरण में चार जगण (ISI ISI ISI ISI) रहते हैं।

उदाहरण—

अदेवन की उर आनि अनीति ।
निबाहन को सुर-पालन-रीति ॥
सुधारन को जन को अधिकार ।
धर्यो हरि वामन को अवतार ॥

(८) वसंततिलका

'गाओ वसंततिलका त भ जा ज गा गो'

यह चौदह अक्षरों का छंद है। इसके प्रत्येक चरण में 'त भ ज ज ग ग ([illegible]) रहता है।

उदाहरण—

रे क्रोध जो सतत[5] अग्नि बिना जलावे ।
भस्मावशेष नर के तनु को बनावे ।

१ लक्ष्मी । २ स्त्री । ३ संयोग से दैवात् । ४ बालू । ५ बराबर, निरंतर ।

अब यद्यपि दुर्बल आरत[1] है।
पर भारत के सम भारत है॥

(५) भुजंग-प्रयात

'य है चार हों ये भुजंग-प्रयातम्'

यह भी बारह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में चार यगण (ISS ISS ISS ISS) रहते हैं।

उदाहरण—

कहूँ किन्नरी[2] किन्नरी[3] लै बजावैं।
सुरी[4] आसुरी[5] बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ यच्छिनी[6] पच्छिनी[7] लै पढ़ावैं।
नगी कन्यका[8] पन्नगी[9] को नचावैं॥

(६) द्रुतविलंबित

'द्रुतविलंबित के न भ भा र है'

इसमें बारह अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरण में 'न भ भ र' (III SII SII SIS) होता है। इसे 'सुंदरी' भी कहते हैं।

---

१ आर्त, दुःखी। २ किन्नरों की कन्याएँ। ३. सारंगी। ४ देवताओं की कन्याएँ। ५ असुरों की कन्याएँ। ६ यक्षों की कन्याएँ। ७. पक्षी, मैना, कोकिल आदि। ८ पार्वत्य देशों की कन्याएँ। ९. सर्पों की कन्याएँ।

उदाहरण—

मन! रमा[1], रमणी[2], रमणीयता।
मिल गई यदि ये विधियोग[3] से॥
पर जिसे न मिली कविता-सुधा।
रसिकता सिकता[4]-सम है उसे॥

(७) मोतियदाम

'धरो शुभ मोतियदाम ज चार'

इसके प्रत्येक चरण में चार जगण (ISI ISI ISI ISI) रहते हैं।

उदाहरण—

अदेवन की उर आनि अनीति।
निवारन को सुर-पालन-रीति॥
सुधारन को जन को अधिकार।
धर्यो हरि ने मन को अवतार॥

(८) वसन्ततिलका

'जानो वसन्ततिलका त भ जा ज गा गो'

यह चौदह अक्षरों का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में 'त भ ज ज ग ग' (SSI SII ISI ISI SS) रहता है।

उदाहरण—

रे क्रोध जो सतत[5] अग्नि बिना जलावे।
भस्मावशेष नर के तनु को बनावे।

१ लक्ष्मी। २ स्त्री। ३ संयोग से दैवात्। ४ बालू। ५ बराबर,

ऐसा न और तुम-सा जग-बीच पाया।
हारे विलोक हम किंतु न दृष्टि न आया॥

(९) मालिनी

'रच न न म य या से, मालिनी सिद्धि लोक'

यह पंद्रह अक्षरों का वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में 'न न म य य' (||| ||| SSS |SS |SS) होता है। इसकी यति ८,७ अक्षरों पर पड़ती है।

उदाहरण—

प्रिय पति वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है?
दुख-जलनिधि डूबी[1] का सहारा कहाँ है?
लख मुख जिसका मैं आज लों जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नेत्र-तारा[2] कहाँ है?

(१०) शिखरिणी

'रसै[?] स्थाणु[?] युक्ता य म न स भ ला गा शिखरिणी'

इस वृत्त मे १७ अक्षर होते हैं। ६, ११ पर विराम होता है। प्रत्येक चरण मे 'य म न स भ ल ग' (|SS SSS ||| ||S S|| |S) होता है।

उदाहरण—

छिपे जाने से भी फिर-फिर सदा प्रश्न तुमसे।
नहीं होते जी में कुपित तुम हे ग्रंथ! हमसे॥

---

१ दुःख रूपी समुद्र में डूबी हुई (यशोदा)। २ आँखों की पुतली।

वे आप जिस काल कांत[1] व्रज में देखा महा मुग्ध हो।
श्रीवृंदावन की मनोज्ञ[2] मधुरा श्यामायमाना[3] मही॥

(१३) मदिरा सवैया

'भासत से गुरु से मदिरा बनती अति मंजुल मोदमयी'

सात भगण (ऽ।।) और एक गुरु प्रत्येक चरण में रखने से बाईस अक्षरों द्वारा 'मदिरा' सवैया बनती है।

उदाहरण—

सिंधु तस्यौ उनको बनरा तुम पै[4] धनु-रेख गई न तरी।
बाँदर बाँधत सो न बँध्यौ उन बारिधि बाँधिकै बाट[5] करी॥
श्रीरघुनाथ प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु[6] पूँछि जरी[7] न जरी[8] जरी लंक जराइ-जरी[9]॥

(१४) मत्तगयंद सवैया

'मत्तगयंद रचो रखि भा सत द्वै ग मनोहर मंजु सवैया'

बाईस से छब्बीस अक्षरों तक के वर्ण-वृत्त 'सवैया' कहलाते हैं। इनमें 'मत्तगयंद' बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

मोतिन-कैसी[10] मनोहर-माल गुहै तुक-अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ, कथा हरि-नाम की, बात अनूठी बनाइ सुनावै॥

---

१. सुंदर। २. मनोहर। ३. श्याम के रंग में रँगी। ४. से। ५. रास्ता। ६. रुई। ७. जटित, युक्त। ८. जली। ९. रत्न-जटित। १०. समान।